Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उत्तर प्रदेश

अक्तूबर, 1987

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश का प्रकाशन

83

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

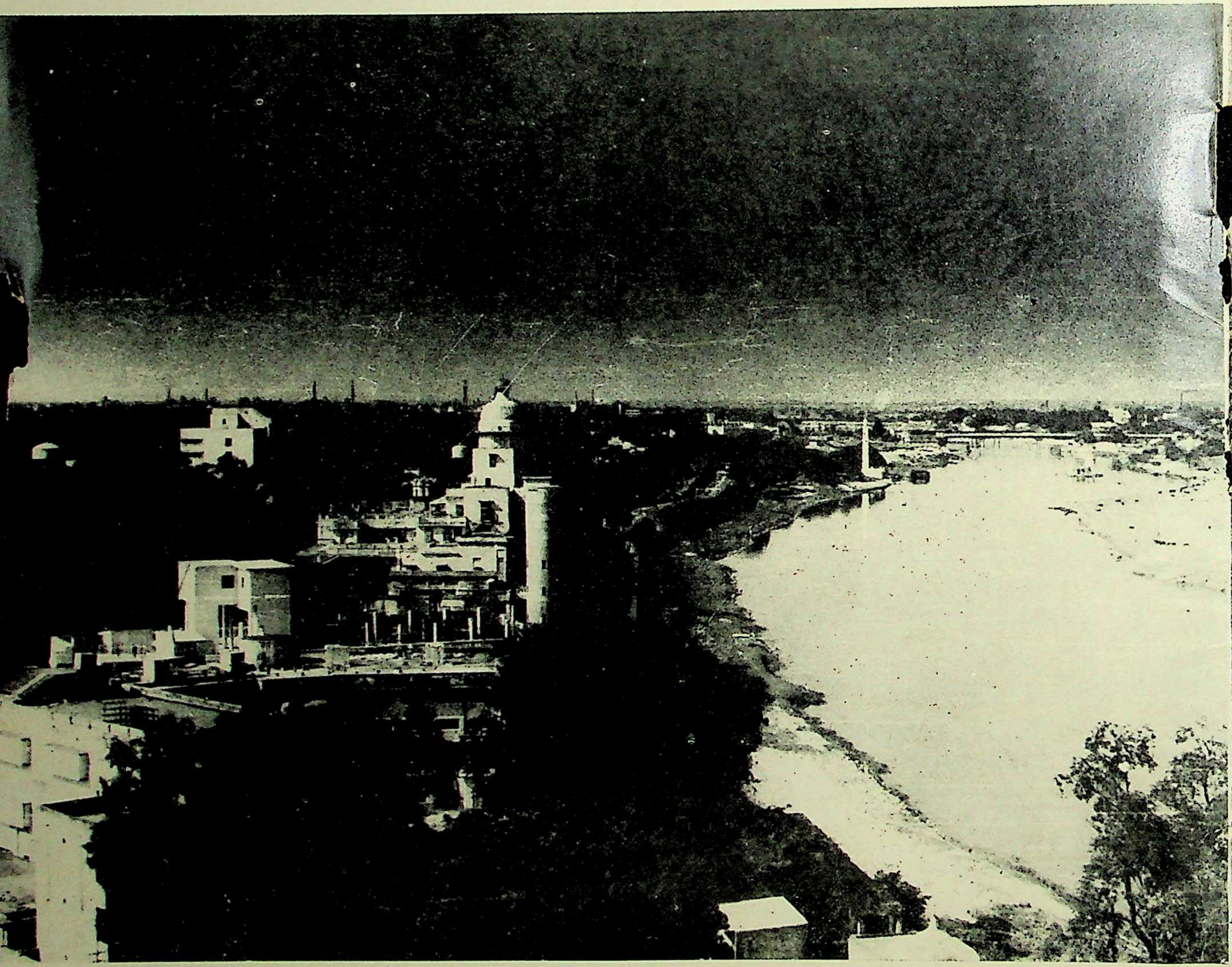

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उत्तर प्रदेश

वर्ष 16] अक्तूबर, 1987 [अंक 5

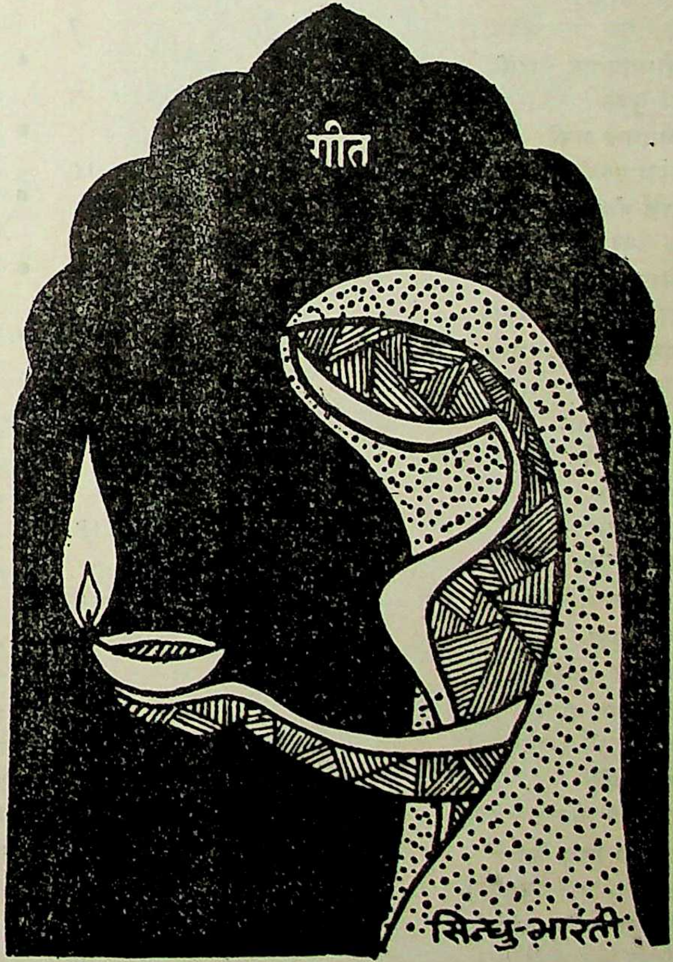

नयी चाँदनी

खिड़की की शलाखों से
नयी SSS चांदनी झरती।
कमरे के फर्श को काट रही ऐसे
पूरे ऐपन का चौक कोई जैसे।
बातें खामोशी से
नयी SSS चांदनी करती।
हलकी नीली-काफी उजली होकर
आयी हो जैसे अभी नहा धोकर।
ऐसी क्वांरी कन्या
नयी SSS चांदनी लगती।
इच्छा होती है इसे उठा करके
सहलाऊँ अपने वक्ष लगा करके।
लेकिन ना–ना–ना–ना
न–नाSS चांदनी करती।

—डॉ० ओम प्रभाकर

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

गीत

माहौल में फिजां के, मायूस हैं बहारें।
गुलशन की गुदगुदी में–आयीं उभर दरारें।
कलियों में हादसा है, खुल कर न खिलखिलातीं।
अब गम के गीत भौंरों की बीन गुनगुनातीं।
टेसू की टहनियों में, खिलने लगे अँगारे।

बुलबुल की आंख गीली, आवाज है भर्राई।
कोयल की मर्सिया से, है गूँजती अमराई।
झुलसा रही गांछों को, तपती हुयी बयारें।
देखा था जिसे पहले, वह गुलसितां नहीं है!
सर सब्जियों का इसमें–नामोनिशां नहीं है।

लगती है फफोलों सी–ये तपिस भरी फुहारें।
अब चाँदनी सिमटी है एक स्याह सी किरन में।
छाया हुआ है मातम? आकाश के आंगन में।
है चाँद की छवि धूमिल, गमगीन हैं सितारे।

—प्रभुनाथ मिश्र

उत्तर प्रदेश

- **डॉ० रामनारायण सिंह 'मधुर'**
  भारतीय मूर्ति शिल्प में लक्ष्मी 3
- **दीनानाथ दुबे**
  उत्पादने बसति लक्ष्मी 5
- **कमल सौगानी**
  लक्ष्मी एक : रूप अनेक 7
- **अयोध्याप्रसाद भारती**
  दुर्गा पूजन 8
- **योगेशचन्द्र शर्मा**
  मर्यादा पुरुषोत्तम राम 10
- **तटस्थ गोस्वामी**
  राम कथा की लोकप्रियता 12
- **योगेशचन्द्र शर्मा**
  कैसा था वह राम राज्य 13
- **रामनारायण उपाध्याय**
  पवित्र सीता को वापस लाओ 15
- **रामनाथ बख्शी**
  सीतामढ़ी और वाल्मीकि आश्रम 17
- **जगपति सिंह**
  मानस मंथन 18
- **चक्रधर नलिन**
  तंत्र-मंत्र अलौकिकता के प्रतीक 19
- **उषा सक्सेना**
  बिना बात (कहानी) 21
- **गोपालदास नागर**
  लोभ का फल (लघुकथा) 23
- **नीला पाण्डेय**
  साहित्य के जीवन्त आदर्श 27
- **केशव देव मिश्र 'कमल'**
  दूरगामी कौन (लघुकथा) 28
- **राजेन्द्रकृष्ण श्रीवास्तव**
  गाँधीजी और नारी 29
- **आशारानी व्होरा**
  गाँधी के मिशन को समर्पित विदेशी महिलायें 30
- **गायत्री कौल**
  महात्मा गाँधी और टालस्टाय 33
- **वीणा श्रीवास्तव**
  बापू के कुछ प्रेरक प्रसंग 35
- **राजेन्द्र कृष्ण**
  सशक्त और साहसी महिला 36
- **वीणा श्रीवास्तव**
  इन्दिरा गाँधी कुछ पावन प्रसंग 37
- **गोपालदास नागर**
  गुजरात के लोकगीतों में लोरियाँ 39
- **शिशिर विक्रांत**
  क्षोभ (लघुकथा) 40
- **वशिष्ठनारायण सिंह**
  राजघाट पुल ने सौ वर्ष पूरे किये 41
- **डॉ० नरेश**
  नये युग के सूत्रधार स्वामी दयानन्द 42
- **डॉ० मंजुलता तिवारी**
  हिन्दी संस्थान उ० प्र० सप्तम् पुरस्कार समारोह 45
- **अयोध्याप्रसाद भारती**
  कौन श्रेष्ठ (लघु कथा) 47
- **डॉ० कौशलकुमार राय**
  बलिया और उसके निवासी (पुस्तक समीक्षा) 48
- **डॉ० उषा अरोड़ा, कैलाश पचौरी, विद्या रश्मि, डॉ० प्रभाकर ओझा, प्रयागदत्त चतुर्वेदी, शम्भूप्रसाद राही, डॉ० श्याम सिंह 'शशि', राजेन्द्र परदेसी, प्रभुनाथ मिश्र**
- आवरण पृष्ठ प्रथम एवं चतुर्थ
  सज्जाकार : **भैरव**
- आवरण पृष्ठ द्वितीय एवं तृतीय
  छायाकार : **के० एन० मेहरोत्रा**

मूल्य
एक प्रति 1 रुपया]
[वार्षिक 10 रुपये

संपादक
डॉ० कौशलकुमार राय

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

भारतीय मूर्ति शिल्प में लक्ष्मी

डॉ० रामनारायण सिंह 'मधुर'

कहा जाता है कि 'जो विद्वान भाषा की शक्ति को जानता है, जो उत्तम बातों, भावों को ग्रहण करता है, समाज में उसी की प्रतिष्ठा है। जैसे सूप से सत्तुओं को साफ किया जाता है, वैसे ही धीर-पुरुष अपनी वाणी को परिष्कृत करके बोलते हैं। उस समय उनके वचनों में लक्ष्मी निवास करती हैं।' अथर्ववेद में 'लक्ष्मी' शब्द मनुष्य के गुण और अवगुण दोनों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। तत्कालीन मान्यता के अनुसार नवजात शिशु सौ लक्षणों से युक्त रहता है। सुन्दर लक्षणों को ही लक्ष्मी माना गया है।

पुराणों के अनुसार लक्ष्मी का प्रादुर्भाव 'भू' अथवा 'सागर' से हुआ। किन्तु महाभारत में उन्होंने सामान्य जीवधारियों की भांति ही जन्म लिया। उसमें सृष्टि के प्राणियों की उत्पत्ति के प्रसंग में यह भी कहा गया है कि दक्ष प्रजापति ने अपनी पुत्रियों का विवाह चन्द्र, धर्म और कश्यप से किया। जो कन्याएं धर्म की सहधर्मिणी बनीं, वे कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा और मति थीं।

विष्णु पुराण में एक कथा आती है। एक दिन दुर्वासा ऋषि ने किसी विद्याधरी से एक माला लेकर अपनी जटाओं में लपेट ली। कुछ दूर जाने पर उन्हें ऐरावत हाथी पर सवार इन्द्र आते हुए दिखाई पड़े। दुर्वासा ने वह माला अपने गले से उतार कर इन्द्र की ओर फेंकी, जो ऐरावत के माथे पर ही अटक गई। ऐरावत ने उसे झटक कर नीचे धरती पर गिरा दिया। दुर्वासा ने इसे अपना अपमान समझा और कुपित होकर शाप दिया—'हे इन्द्र, मदान्ध होकर तुमने न तो मुझे नमस्कार किया और न मेरी माला ही धारण की, अतः तुम्हारी 'श्री और सत्व' विलीन हो जायेंगे।' अभिशाप सिद्ध हुआ। देवराज इन्द्र दैत्यराज बलि से पराजित हुए। 'श्री' ने इन्द्र को त्यागकर बलि को कृत-कृत्य किया।

स्कंद पुराण और वाल्मीकि रामायण, दोनों में पद्मा तथा सीता का भूमि से उत्पन्न होना, लक्ष्मी के पृथ्वी से जन्म लेने के समान गर्भितार्थ का द्योतन करता है। लक्ष्मी को 'उदधि-तनया' भी कहा जाता है। देव और दानवों ने मिल कर समुद्र-मंथन किया। दोनों दल श्रम से श्लथ हो गये, सागर क्षुब्ध हो उठा। श्वेत, शीतल, आभा युक्त चन्द्र उदित हुआ, उनकी क्लान्ति दूर हुई। फिर विशाल शतदल पर लक्ष्मी प्रकट हुईं। क्षीरसागर दिव्य पुरुष के रूप में अवतरित होकर उन्हें कमल-माल अर्पित किया और विश्वकर्मा ने रत्नालंकार। उन्हें ग्रहण कर वे संपूर्ण संसार के प्रिय केशव के वक्षस्थल में विलीन हो गयीं। वस्तुतः यह मानवीय भावनाएं थीं, जिन्हें देवी के रूप में प्रतिष्ठा दी गई है। बाद में शिल्पियों

ने इनकी प्रतिमाओं का निर्माण किया तथा शास्त्रों में प्रतिमा लक्षणों का निर्देश किया गया।

सर्वप्रथम हमें बौद्ध-शिल्प में ही लक्ष्मी का दर्शन उपलब्ध होता है। भरहुत के स्तूप की वेदिका पर गज-लक्ष्मी की जो प्रतिमा आंकी गई थी, वह वेदिका के टूटे हुए टुकड़े पर जनरल कनिंघम को प्राप्त हुई। एक गोलाकार में, जल-कुम्भ में से तीन खिले कमल निकले हैं, इनमें से बीच के पुष्प पर गजलक्ष्मी बैठी हैं और दोनों ओर के दो कमल दलों पर दो हाथी पैर सिकोड़े खड़े हैं। सूची से जुड़े स्तम्भ पर ध्वजा लिए अश्वारोही हैं और दूसरे पर कुछ उपासक बोधिवृक्ष के नीचे बने स्तूप की उपासना कर रहे हैं। यह प्रारम्भिक शिल्प है, जिसका विकास पूर्ववर्ती लोक-कला की परंपरा से ही हुआ है।

सांची के स्तूप के तोरणों पर तो पद्मा श्री तथा गज-लक्ष्मी के कई स्वरूपों को विभिन्न प्रकार से आंका गया है। कहीं वे हंसों और कमला पुष्पों के बीच में पुष्करिणी में एक कमल-दल पर खड़ी दिखाई देती हैं और कहीं दिग्गज घुटने टेके उनका अभिषेक करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। एक प्रफुल्लित पद्म-कोष पर वे पालथी मारे बैठी हैं। यह कमल का फूल भी जल-कुंभ की आकृति का है। पंखे के आकार के कमल-पत्रों व दो अर्ध मुकुलित कमल-कलिकाओं की छवि देखते ही बनती है। श्री देवी की कमर में उमेठी हुई करधनी और सिर पर दुपट्टा है। उनके गले में माला और कानों में चौकोर कुण्डल हैं। उत्तर दिशा वाले तोरण पर माता गज-लक्ष्मी एक खिले कमल पर खड़ी हैं। उनके दोनों ओर एक-एक कमल-पत्र, खिला कमल और कलिका हैं। हाथियों के सिर पर टोपियां हैं। उनकी सूंड़ों में जल कुम्भ हैं। देवी की धोती घुटनों से भी

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

नीची है, जिसका एक छोर वे हाथ से पकड़े हुए हैं। इन सब प्रतिमाओं पर आध्यात्मिकता की झलक नहीं, लोक-जीवन की सहज सुन्दरता दिखाई देती है। कई जगह गज-लक्ष्मी पर छतरी लगी है। छतरी समादर या उपासना का चिन्ह है। कुछ कला-समीक्षकों का यह मत है कि बौद्ध शिल्प में श्री या लक्ष्मी उपासना के लिये नहीं वरन् अलंकरण के लिए लाई गई। जुन्नार के प्राचीन बौद्ध गुहा मन्दिर की गज-लक्ष्मी की प्रतिमा, उनका अभिषेक करते हुए हाथी भी इस मत की पुष्टि नहीं करते।

एक वैदिक कवि ने लक्ष्मी की उपासना में लिखा है–'जिन्होंने अपने दोनों हाथों में दो पद्म धारण किये हैं, जिनके शेष दो हाथों की मुद्राएं वरद और अभय हैं, जिनके शरीर की कांति तप्त कांचन के समान है, शुभ्र मेघ की आभा से युक्त दो हाथियों की सूड़ों में धारण किये हुए कलशों के जल से जिनका अभिषेक हो रहा है, जिनके वस्त्र भी अत्यन्त शुभ्र और स्वच्छ है, ऋतु अनुकूल, चंदनादि आलेपन के द्वारा जिनके अंग लिप्त हैं, पद्म के समान जिनके नेत्र हैं, पद्मनाभ क्षीरशायी विष्णु के उर में जिनका निवास है, कमलासन पर आसीन वे देवी हमारे लिए परम ऐश्वर्य का विधान करें!

उपासना के इन्हीं लक्षणों को ध्यान में रखकर महाबलीपुरम और एलोरा में लक्ष्मी की सुन्दर प्रतिमाएं गढ़ी गई हैं। महाबलीपुरम की प्रतिमाओं को देखकर ऐसा लगता है, मानों जयदेव की माधुर्य एवं सौन्दर्यमयी राधा ही मूर्तिमयी हो गई हों। महाबलीपुरम के मन्दिर मद्रास से 75 कि.मी. दूर सागर-तट पर हैं। उनकी आकृति रथ जैसी है और वे 'पांडव-रथ' के नाम से विश्रुत भी हैं। यहाँ द्रौपदी-रथ में श्री लक्ष्मी एक विशाल कमल-दल पर आसीन हैं। उनके हाथों में विष्णु-प्रतीक शंख-चक्र आदि हैं। उनके शरीर पर आभूषणों का वह भार नहीं है, जो दक्षिण के बाद के शिल्प में दिखाई देता है। यह पाषाण-शिलाओं को काट कर बनाया गया शिल्प है। इसका श्रेय पल्लवराज श्री महेन्द्र वर्मा एवं उनके पुत्र श्री नरसिंह वर्मा को प्राप्त है, जिन्होंने 600-650 ई० तक इन कला-मन्दिरों का निर्माण कराया। महाबलीपुरम की 'श्री लक्ष्मी' के निकट चार स्त्रियां जल-कुम्भ लिये खड़ी हैं, मानों झुकी हुई सुन्दर लतिकाएं हों। दीर्घिका पार पर विशालकाय हाथी हैं।

एलोरा की प्रतिमाएं अपनी विशालता, भव्यता और भाव-व्यंजन में सानी नहीं रखतीं। शिल्पियों की अनेक पीढ़ियों की साधना ने शताब्दियों तक पत्थर काट-काट कर उसे मोम की तरह तराश कर, इन गुहामन्दिरों एवं प्रतिमाओं का निर्माण किया है। गहरे खेद के साथ कहना पड़ता है कि इन प्रतिमाओं को खंडित कर एक विलक्षण शिल्प को नष्ट करने का घृणित कार्य मनुष्यों ने ही किया है। विष्णु के पास लक्ष्मी आसीन हैं। उनके केशों का जूड़ा 'कुंतल' मुकुट के आकार का है। तत्कालीन साम्राज्ञियों एवं श्रेष्ठि बालाओं को ऐसा ही केश-विन्यास रुचिकर था।

एलोरा की कैलास गुफा में एक विशाल पद्मासन पर ध्यानावस्थित लक्ष्मी बैठी हैं। उनके दोनों पार्श्व में हाथियों के दो बच्चे हैं। उनकी पीठ और गले में जंजीरें पड़ी हैं। उनके घुटने मुड़े हुए हैं और उनकी सूंड़े जल-कलशों पर टिकी हैं। पीछे दो विशालकाय दिग्गज जलाभिषेक कर रहे हैं। देवी के सिर पर तने हुए छत्र में मोतियों की मालाएं लटक रही हैं। हाथियों के पीछे दीवार पर देवों की आकृतियां हैं। यह प्रतिमा खण्डित है।

दशबातार गुफा में भी गज-लक्ष्मी की एक मनोहर प्रतिमा है। वे पद्मासन पर बैठी हैं। एक चरण भूमि पर है। उनके माथे पर किरीट और गले में मोतियों की माला है। नेत्र उन्मीलित हैं। उनके हाथों में एक वरदमुद्रा में उठा हुआ जान पड़ता है, किन्तु वह टूटा हुआ है। दूसरा हाथ, स्तन व नासिका भी भग्न कर दिये गये हैं। पद्म देवी के दोनों ओर दो पुरुष मूर्तियां हैं। इनके हाथों में जल-कुंभ हैं। इनमें से एक चतुर्भुज श्री विष्णु प्रतीत होते हैं और दूसरे शिव। एलोरा की इस प्रतिमा के नीचे कमल-पत्रों और पुष्पों से परिपूर्ण सरोवर है। सरोवर में तीन-चार नाग जल-कलश लिए खड़े हैं। पीछे नागी है।

शिल्प शास्त्र में दो अन्य देवियों का विष्णु-प्रिया के रूप में अंकन हुआ है, जिनके नाम हैं–वैष्णवी और भू-देवी। वैष्णवी सप्त मातृकाओं में हैं। उनके हाथों में उनके स्वामी के प्रतीक शंख, पद्म रहते हैं।

लक्ष्मी-नारायण की प्रतिमाओं में नारायण खड़े रहते हैं। उनके हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म रहते हैं। इनका शंख सागर और उनकी समृद्धि का सूचक है तथा चक्र उनके पराक्रम का। यज्ञ-स्थल में चक्र को सूर्य का प्रतीक मानकर रखा जाता है। गदा शक्ति का द्योतक है और कमल अमृतमय जीवन और सृजन का। विष्णु प्रिया अपने बायें हाथ में कमल लिए रहती हैं।

मथुरा संग्रहालय में लक्ष्मी-नरसिंह की दो कांस्य प्रतिमाएं हैं। चतुर्भुज नरसिंह पद्मासन पर बैठे हैं। उनके दाहिने हाथों में एक में वज्र है और दूसरा हाथ अभयदान देने की मुद्रा में है। बाएं हाथों में से एक में शंख है और दूसरा हाथ लक्ष्मी जी के कन्धों पर टिका हुआ है। लक्ष्मी छोटे-से पद्म पर विराजमान हैं। दूसरी प्रतिमा में वे नरसिंह की बाईं जंघा पर बैठी हैं।

लक्ष्मी गणपति की प्रतिमाएं भी मिलती हैं। निश्चित है कि गणपति अनार्य देवता हैं। परन्तु हमारी समन्वयवादी भारतीय साधना से शिव की तरह गणेश को भी अपना लिया है। भारतीय शिल्प में उनकी प्रतिमाएं एलोरा, एलीफेंटा आदि गुफाओं में सप्त मातृकाओं के साथ आंकी गई हैं। श्री मंत्र महोदधि के अनुसार–'उनके हाथों में चक्र हो। एक हाथ से अपना दंत पकड़े हों। माथे पर शिव की तरह तीसरा नेत्र हो, लक्ष्मी गणपति का वर्ण स्वर्ण जैसा हो।' लक्ष्मी के साथ गणेश की प्रतिमाएं दक्षिणापथ में अधिकतर मिलती हैं, जिनमें वे एक हाथ से लक्ष्मी को आलिंगन करते हुए दिखाये जाते हैं। तन्काशी के विश्वनाथ स्वामिन के मन्दिर की होयसल काल की प्रतिमा भी ऐसी ही है। भारतीय समाज ने लक्ष्मी-गणेश के इस रूप को कभी भी मान्यता नहीं दी। किन्तु दीपावली के दिन लक्ष्मी को गणेश के निकट बैठाकर पूजा करने की प्रथा अवश्य चल पड़ी।

●

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उत्पादने बसति राष्ट्र लक्ष्मी

—दीनानाथ दुबे

एक कहावत है 'सदा दीवाली तहँ धर जहँ गुड़, घी, गेहूँ होय'। इस कहावत का अर्थ स्पष्ट है कि दीवाली वहीं है, जहां गुड़, घी और गेहूं आदि चीजें सुलभ हैं। समृद्धि अपने आप में नहीं आती। उसके लिए परिश्रम करना पड़ता है। दीपावली पर्व की पृष्ठभूमि में श्रम व प्रकाश का विराट सम्बन्ध है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। कार्तिक मास की अमावस्या को जब गहन अन्धकार होता है, उस समय प्रकाश ही अन्धकार को दूर कर हमारा मार्ग आलोकित करता है। महाभारत के रचयिता महर्षि वेद व्यास जी ने ठीक ही कहा है—

सत्या धारस्ते परेस्तेध्ये दयार्वात क्षमाशिखा।
अंधकारे प्रवेष्टव्ये दीपो यलेन वार्यताम॥

यानी अन्धेरे को दूना होने दो। दीपक जलाओ, पर यत्नपूर्वक जलाओ। यह दीप सत्याधारित हो। इसमें तम का तेल मिले और बाती दया की पूरी गयी हो, इसकी लौ क्षमा की हो।

सारी दुनिया श्रम पर टिकी है। प्रकृति के सभी अंग सूर्य, वायु चन्द्रमा सभी श्रम करते हुए दिखाई दे रहे हैं। मानव का स्वभाव श्रम करना है। निराश होकर बैठ जाना पशु प्रवृति है। जीवन का वास्तविक अर्थ पुरुषार्थ में निहित है। पुरुषार्थ में ही प्रगति समाविष्ट है। आज विश्व में सम्पन्नता और प्रगति के जो भी आयाम नज़र आते हैं वे महान पुरुषों के परिश्रम के ही सुफल हैं। पुरुषार्थ और परिश्रम प्रगति पथ के मूलमंत्र हैं। श्रम व पुरुषार्थ से सब कुछ सुलभ है। श्रम देव सभी देवों से ऊंचे हैं। श्रम भगवान की सच्ची उपासना है। श्रम का दूसरा नाम उद्योग भी है। गीता में कहा गया है—

बुद्धियुक्तो जहांतोह, उमे सुकृते दुष्कृते।
तस्मोध्योगाय युज्यस्वः, योग कर्मसुकौशलम्॥

परिश्रम एक उत्पादन शक्ति है। बिना परिश्रम के कुछ भी संभव नहीं। परिश्रम से केवल विभूति या ऐश्वर्य ही नहीं, आनन्द का भी अनुभव होता है। इसलिये परिश्रम की महिमा अपार बतायी गयी है। संस्कृत साहित्य में परिश्रम पुरुषार्थ के सम्बन्ध में काफी सामग्री मिलती है। ऐसा ही एक सूक्ति देखिये—

गच्छन् पोपिलको याति, योजनाम् शतंरपि।
अगच्छन वंनतेयो पि, पदमेक नच्छति॥

चींटी यदि चलती जाय तो वह हजारों योजन जा सकती है किन्तु यदि गरुड़ बैठा रहे तो एक पग भी नहीं जा सकता। हमारे धर्म-ग्रन्थों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिये पुरुषार्थ को मुख्य धर्म माना गया है। मनुष्य के हाथ में लक्ष्मी बसती है परन्तु यह तभी संभव है जब वह उद्योग करता रहे। दीन, दरिद्र, दुर्बल और दुःखी रहना अपराध है। मनुष्य अपने भाग्य का विधाता स्वयं है। ऐतरेय ब्राह्मण में एक कथा आती है। इस कथा में देवराज इन्द्र ने अपने पुत्र रोहित को उपदेश देते हुए कहा है—

नाना श्रान्ताय श्रीरस्ति, पायोनृप करोजनः।
इन्द्र इच्चरत सखा, चरैवेति ? चरैवेति॥

श्रम किये बिना लक्ष्मी की प्राप्ति नहीं होती, सुस्त मनुष्य पापी होता है। पुरुषार्थ का मित्र ईश्वर होता है। पुरुषार्थ करो! पुरुषार्थ करो!

पुष्पिपण्यो चरते अन्धे, भूष्णारात्मफल ग्रहि।
शेरेस्य सर्वपापमानः, श्रमेण प्रयेहतः चरैवेति! चरैवेति!

जो चलता है उसकी जांघ पुष्ट हो जाती है। फल मिलने तक प्रयत्न करने वाले की आत्मा प्रभावशाली होती है। फल प्राप्ति से आत्मा

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दुर्गा पूजन

—अयोध्या प्रसाद 'भारती'

बड़ी पुरानी बात है। एक बड़ा शक्तिशाली राक्षस था। उसका नाम था महिषासुर। हर जगह उसका आतंक था। पशु-पक्षी, जानवर, मनुष्य, देवी-देवता सभी उससे परेशान थे। वह देवताओं के राजा इन्द्र का शासन भी हथियाना चाहता था। जब इंद्रासन को खतरा होने लगा, तो देवतागण भगवान विष्णु, ब्रह्मा और शिव से मिले और अपनी परेशानी से अवगत कराया। तीनों देवों ने देवताओं की बातें ध्यान से सुनीं और अपनी-अपनी शक्तियां देकर एक देवी का उदय किया। इस देवी को शस्त्रों से सज्जित कर महिषासुर से लड़ने को भेजा गया।

सर्दी के आरम्भ (क्वार माह) में यह देवी राक्षस महिषासुर से भिड़ गयी। दोनों में नौ दिन तक घमासान लड़ाई चलती रही। आखिर दसवें दिन (इसी दिन दशहरा मनाया जाता है) देवी ने राक्षस महिषासुर को हमेशा-हमेशा के लिये समाप्त कर दिया। यह देवी और कोई नहीं बल्कि प्रसिद्ध मां दुर्गा हैं, जिनकी लगभग हर हिन्दू पूजा करता है।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

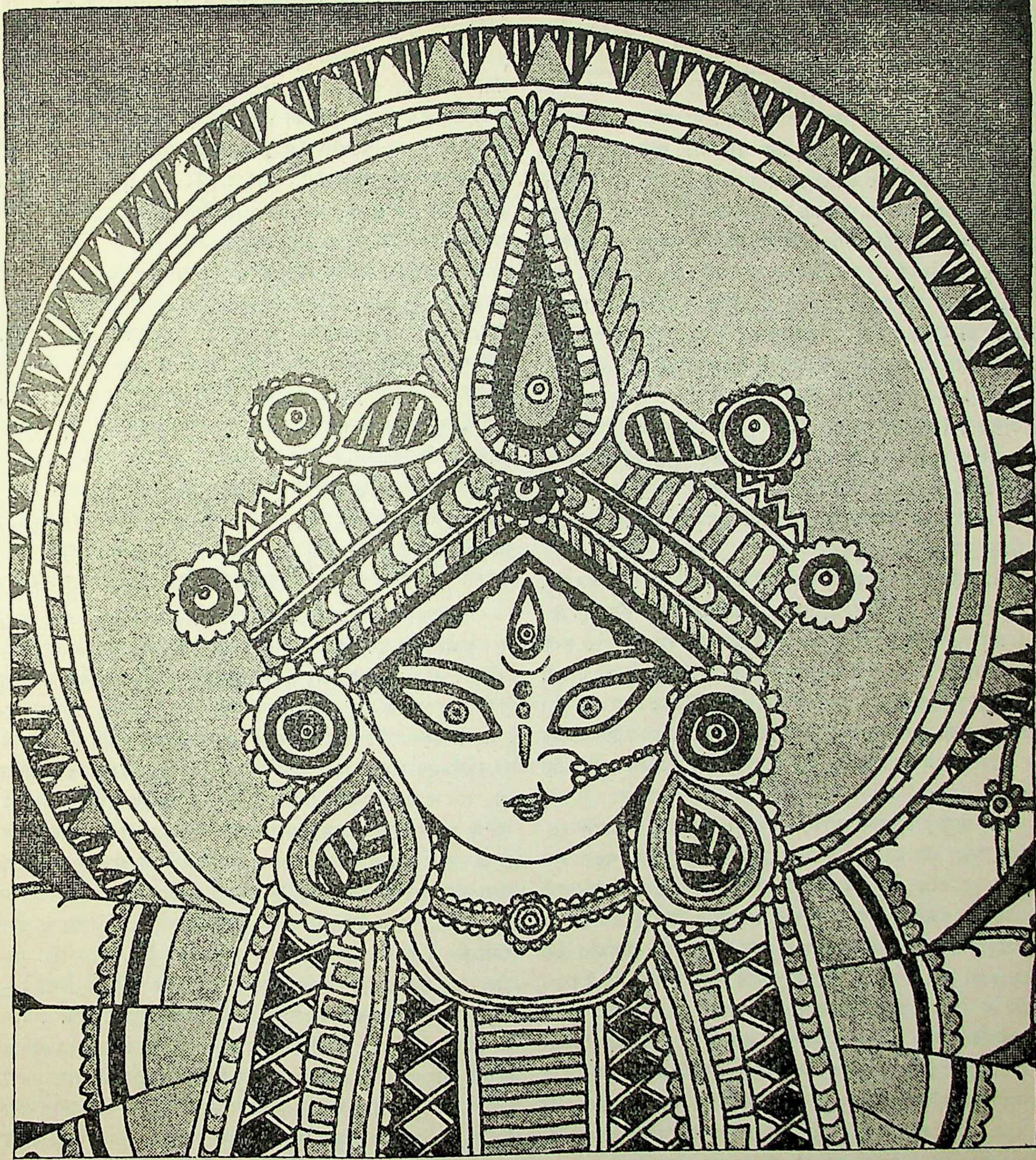

बहुत पहले इस देवी को आदमी की भेंट (बलि) चढ़ाई जाती थी। बाद में इस कार्य को बुरा समझ कर कुछ लोगों ने बकरे की बलि चढ़ाना शुरू कर दिया और नरबलि परम्परा समाप्त हो गयी। पशुबलि भी अब बहुत कम हो गयी है। दक्षिण भारत में रामलीला या दशहरा त्यौहार नहीं मनाए जाते, वहां मां दुर्गा की ही पूजा की जाती है। मंदिर सजाए

(शेष पृष्ठ 16 पर)

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

मर्यादा पुरुषोत्तम राम

—योगेशचन्द्र शर्मा

रामायण की ऐतिहासिकता को अब सामान्यतः सभी लोग स्वीकार करते हैं। विवाद केवल इस बात पर है कि यह घटना कितनी पुरानी है। रामकथा के बारे में यह उल्लेखनीय तथ्य है कि इसे सर्वप्रथम शब्दबद्ध करने वाले आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने सम्पूर्ण घटनाक्रम को स्वयं देखा या सुना है। वे श्रीराम के समकालीन थे। इसलिए मूल कथा की सत्यता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। हाँ, काव्यगत अतिश्योक्ति यत्किंचित रूप में सहज सम्भव है। कुछ विद्वानों का विचार है कि राम कथा का घटनाक्रम वैदिक काल से भी पूर्व का है। इस मान्यता के पक्ष में वे लोग यह तर्क देते हैं कि (क) श्रीराम के पूर्वज 'इक्ष्वाकु' का उल्लेख वेदों में हुआ है (ऋग्वेद 10/60/4 तथा अथर्ववेद 19/29/9), (ख) श्रीराम के पिता 'दशरथ' का भी नाम, दान स्तुति प्रसंग में ऋग्वेद (1/126/4) में आया है तथा (ग) एतरेय ब्राह्मण और शतपथ ब्राह्मण में स्वयं श्रीराम का भी उल्लेख है। श्रीराम पर एक अलग उपनिषद् भी लिखा गया है—रामोपनिषद्।

रामकथा के बारे में अब तक की गई खोजों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह घटना वैदिक काल या उससे पूर्व की नहीं है। सम्भावना यही है कि 'इक्ष्वाकु' और 'दशरथ' नाम के अन्य कोई नरेश वैदिक काल में हुये होंगे। यह भी संभव है कि इन नामों को बाद में किसी श्रद्धालु भक्त के द्वारा किसी सन्दर्भ में वेदों में जोड़ दिया गया हो। उपनिषदों में तो इस प्रकार के परिवर्तन और भी अधिक सहज सम्भव हैं। 'रामोपनिषद्' तो निश्चित ही रामकथा के बाद की कृति प्रतीत होती है।

रामायण के घटना-काल के बारे में डॉ० ब्रजवासी तथा डॉ० हंसमुख सांकलिया जैसे पुरातत्व वेत्ताओं का विचार है कि यह घटना ईसा से केवल चार-पाँच शताब्दी पूर्व की है। दूसरी तरफ जो विद्वान वेदों को आठ-दस हजार वर्ष पूर्व की रचना मानते हैं, उन्होंने इसे ईसा से चार-पाँच हजार वर्ष पूर्व की घटना माना है। इसके अतिरिक्त एक मध्यम मार्गी विचार और है, जो अधिक तर्क संगत प्रतीत होता है। इस विचार के अनुसार रामायण की घटना, ईसा के लगभग डेढ़-दो हजार वर्ष पूर्व की है। इस विचारधारा को इस आधार पर भी प्रमाणित किया जा सकता है कि ईसा से लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व संसार में प्रलय हुआ था, जिसकी चर्चा विश्व के लगभग सभी धर्मग्रंथों में है। उस समय भारत में, प्रथम मनु वैवस्वत मनु के होने का उल्लेख है। उन्हीं की 65 वीं पीढ़ी में 'राम' हुए। इस आधार पर यदि गणना की जाये तो कालक्रम लगभग यही बैठता है। आदि मनु 'वैवस्वत मनु' से लेकर महाभारत तक की 98 पीढ़ियों का विवरण हमें पुराणों में तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों में प्राप्त होता है। यह तथ्य भी रामायण और महाभारत की ऐतिहासिकता को पुष्ट करता है।

राम कथा के प्रमुख पात्र श्रीराम हैं, जो युग पुरुष हैं और जिनके साथ उनका युग, त्रेता युग समाप्त होता है। त्रेता युग के अन्तिम चरण में जन्म लेकर श्रीराम ने जीवन के हर क्षेत्र में मर्यादाओं का पालन करते हुए अपने 'मर्यादा पुरुषोत्तम' वाले स्वरूप को प्रतिष्ठित किया था। यही उनके जीवन की सबसे बड़ी विशिष्टता और सबसे बड़ा आदर्श है। वे पूर्णतः अपने समाज और देश के प्रति समर्पित हैं। उनका निजी हित या स्वार्थ कहीं भी उन पर हावी नहीं होता।

श्रीराम का स्वभाव वीतरागी है। राजा जनक के दरबार में बैठे हुए वे तब तक धनुष को उठाने या उसे तोड़ने की उत्सुकता नहीं दिखलाते, जब तक कि राजा जनक पृथ्वी को 'वीर विहीन' बतलाकर सम्पूर्ण पृथ्वी को ही चुनौती नहीं दे डालते। तब विधाता के द्वारा रचित इस पृथ्वी का सम्मान बनाये रखने के लिए वे महर्षि विश्वामित्र के निर्देश पर ही आगे बढ़कर अपने कर्तव्य का पालन करते हैं। इतना असाधारण कार्य करने पर भी उनके मन में कहीं कोई अहंकार या अहं का लेशमात्र नहीं। महर्षि परशुराम के क्रुद्ध स्वरूप को देखकर भी वे आवेश में नहीं आते। बड़ों के प्रति सम्मान की भावना से वँधे रहते हैं। लक्ष्मण जब आवेश में आते हैं तो उन्हें भी रोकते हैं और अन्त में अपने वाक् चातुर्य और विनम्रता के आधार पर ही महर्षि परशुराम का वे स्नेह प्राप्त कर लेते हैं।

इसी प्रकार, श्रीराम के वीतरागी स्वभाव की एक और घटना लें। अयोध्या में उनके युवराज बनाने की जोर-शोर से तैयारियाँ की जा रही हैं। सर्वत्र आमोद-प्रमोद का वातावरण है। श्रीराम उस वातावरण से निर्लिप्त रहकर अपने कार्य में व्यस्त हैं। लगता है, जैसे उस आमोद-प्रमोद से उनका कोई सम्बन्ध नहीं। इसके बाद जब कैकेयी को दिये गये वचन के अनुसार महाराज दशरथ विवश होकर भरत को राज्य सिंहासन और राम के वनवास की स्वीकृति दे देते हैं तो सम्पूर्ण अयोध्या शोक के गर्त में डूब जाती है। मगर श्रीराम इससे भी अप्रभावित रहते हैं। वे सहज प्रसन्न भाव से गुरुदेव वशिष्ठ के पास वनवास के लिए आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु पहुँचते हैं। गुरुदेव वशिष्ठ स्नेहवश राम को अयोध्या में ही रुकने के लिए आग्रह करते हैं। वे किसी प्रकार महाराज दशरथ और रानी कैकेयी को मना लेने का भी आश्वासन देते हैं। मगर मर्यादा पुरुषोत्तम इसे उचित नहीं मानते। वे आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहते हैं—"गुरुदेव ! यह आप क्या कह रहे हैं? आपका शिष्य होकर क्या मैं ऐसा कर सकता हूँ? आपने ही तो एक बार कहा था कि सुख का राज्य सीमित होता है और दुःख का असीमित। फिर मैं क्षणिक सुख की कामना क्यों करूँ? मैं तो वन में जाकर असीमित साम्राज्य के सुख का आनन्द लेना चाहता हूँ।" गुरुदेव वशिष्ठ स्वयं के द्वारा स्थापित आदर्श में ही उलझ गये और विवश हो कर स्वीकृति देनी पड़ती है।

रामकथा का भ्रातृप्रेम भी अनूठा और अनुकरणीय आदर्श है। पिता की आज्ञा पाकर श्रीराम, भाई भरत के लिए निष्कंटक राज्य छोड़कर

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

निर्विकार भाव से वन की ओर प्रस्थान कर देते हैं। भरत ननिहाल से लौटते हैं तो अप्रत्याशित रूप से प्राप्त हुआ राज्य उन्हें भी रुचिकर नहीं लगता। वे अग्रज को मनाने चित्रकूट जाते हैं। मगर श्रीराम, पिता की आज्ञा से बँधे हुए हैं। वे अयोध्या कैसे लौटते? दोनों अपनी-अपनी मर्यादाओं से बँधे हुए हैं, दोनों के हृदय में अद्‌भुत अन्तर्द्वन्द्व होता है और तब एक मध्यम मार्ग निकल आता है। भरत के अत्यधिक आग्रह से विवश होकर, राम उन्हें अपनी खड़ाऊँ देकर विदा कर देते हैं और भरत, अग्रज राम के प्रतीक स्वरूप उन खड़ाउओं को ही सिंहासन पर रखकर सेवक के रूप में शासन का संचालन करने लग जाते हैं। वनवास की अवधि समाप्त होने पर श्रीराम अयोध्या शीघ्र लौटने के लिये व्यग्र हो उठते हैं। मगर उसके पीछे सिंहासन का मोह किंचित भी नहीं। उन्हें केवल इस बात की चिन्ता है कि विलम्ब होने से अनुज भरत कहीं प्राण न त्याग दें। निश्चित ही ऐसा भ्रातृ-प्रेम विश्व में सहज सुलभ नहीं।

राम-रावण युद्ध भी, दो राजाओं के बीच का सामान्य युद्ध नहीं, अपितु दो विचार धाराओं का संघर्ष था। एक तरफ आध्यात्मिकता थी, दूसरी तरफ भौतिकता। एक तरफ मानव संस्कृति थी, दूसरी तरफ राक्षस संस्कृति। एक तरफ जन साधारण को ही सब कुछ समझने की ऐसी भावना थी, जिसमें एक साधारण धोबी की आवाज भी उपेक्षित नहीं रह पाती, दूसरी तरफ थी पूर्ण निरंकुशता की प्रवृत्ति। एक तरफ वीतरागी भाव थे तथा दूसरी तरफ सब कुछ हड़प लेने की भावना। इस विरोधाभास वाली स्थिति के बावजूद राम ने अपनी मर्यादा नहीं छोड़ी। उन्होंने रावण की विद्वत्ता का भी सदैव सम्मान किया। मृत्यु शैया पर लेटे हुए रावण के पास उन्होंने ज्ञान प्राप्त करने के लिये अपने अनुज लक्ष्मण को भेजा। रावण के राज्य पर आधिपत्य जमाने की कामना भी उनके अन्दर कभी उत्पन्न नहीं हुई। सहज रूप में उन्होंने रावण का राज्य उसी के सहोदर विभीषण को सौंप दिया।

समानता का आदर्श स्थापित करने में भी श्रीराम का स्थान उल्लेखनीय है। परब्रह्म प्रभु के द्वारा निर्मित इस विश्व में वे रूप, रंग या जाति आदि किसी भी आधार पर मनुष्य-मनुष्य के बीच किसी प्रकार का कोई अन्तर नहीं करते। मूल प्रश्न मनुष्य की भावनाओं का है, उसकी जाति या वर्ण का नहीं। इसी आधार पर वे अछूत केवट को गले लगाते हैं, भीलनी के जूठे बेर खाते हैं और राक्षस जाति के विभीषण को अनुज के समान स्नेह देते हैं। समानता का यह आदर्श आज के भारत में विशेष रूप से अनुकरणीय है।

श्रीराम के आदर्श चरित्र और उनके आदर्शों का प्रभाव न केवल भारत के मत-मतान्तरों पर ही अपितु विश्व के अन्य अनेक देशों पर भी पड़ा है। कहीं पर यह प्रभाव अपने पूर्ण रूप में दृष्टिगत होता है और कहीं आंशिक रूप में। कहीं-कहीं स्थानीय परिस्थिति और वैचारिकता के रंग में भंग कर रामकथा को काफी अधिक मोड़ भी दे दिया गया है। बौद्धों ने रामकथा पर 'दशरथ जातक' तैयार किया और जैन मतावलम्बियों ने 'स्वयंभू रामायण'। कबीर तथा नानक जैसे महान् सन्तों ने अपने साहित्य में रामचरित्र को ही मुख्य आधार बनाया। रहीम जैसे मुसलमान कवि भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रह सके। जावा, इन्डोचाइना, थाईलैंड तथा बोर्नियो आदि के विद्वानों ने तो राम को अपने ही देश का नायक बतलाकर प्रस्तुत किया और रामकथा के अनुरूप अपने यहां विभिन्न स्थानों का नामकरण भी कर दिया। जावा में रामकथा वाले ग्रंथ का नाम 'सेरत राम' है। जावा में 1157 का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है, जिसमें श्रीराम की विभिन्न लीलाओं का उल्लेख किया गया है। चण्डी जागरम् के साठ फुट ऊँचे मन्दिर में श्रीराम से सम्बन्धित अनेक घटनाओं के चित्र हैं। सम्पूर्ण इन्डोनेशिया में बड़े पैमाने पर रामलीलाओं का आयोजन किया जाता है। तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० सुकर्ण ने एक बार कहा था—हमारे देश ने सबसे अधिक शिक्षा राम के आदर्श चरित्र से प्राप्त की है। अतः इन्डोनेशिया में भारत के बराबर ही राम और रामकथा के प्रति आस्था है। 'कम्बोडिया में अनेक हिन्दू मन्दिर हैं, जिनमें रामकथा से सम्बन्धित अनेक चित्र अंकित हैं। कैलाश पर्वत को हाथ में उठाये हुए रावण की चौदहवीं शताब्दी में निर्मित एक मूर्ति भी यहाँ उपलब्ध है। बर्मा में रामायण का नाम 'रामयागन' है। वहाँ नवीं शताब्दी के एक नगर 'रामावती' के ध्वंषावशेष भी मिले हैं, जिनमें भगवान विष्णु के अवतार के रूप में राम की अनेक मूर्तियाँ मिली हैं। थाईलैंड के नरेश अपने नाम के साथ रामाधिपति की उपाधि लगाते रहे हैं। वहाँ अयोध्या और लवपुरी नगर भी हैं; वहाँ 'रामकियेना' के नाम से रामकथा का ग्रंथ भी उपलब्ध है। मलाया में इस ग्रंथ का नाम 'हकायत सिरी राम' है; मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव के कारण मलाया में दशरथ को हजरत आदम का पड़पोता बतलाया गया है। वहाँ पर मन्दोदरी को दशरथ की पत्नी तथा सीता को रावण की बेटी के रूप में स्वीकार किया गया है। ईराक में 1800 वर्ष पूर्ण के ग्रंथों में राजा दशरथ की चर्चा है, जो इन्द्र तथा वरुण आदि देवताओं का पूजन करता था। सोवियत संघ में भी रामकथा का पर्याप्त प्रभाव है और इस कथा को वहाँ प्रायः मंच पर भी प्रस्तुत किया जाता है। मारीशस, फीजी तथा गुयाना में अनेक राम मन्दिर बने हुये हैं। अमरीका के पेरू देश में इंका नाम की एक अत्यन्त पुरानी जाति है, जो अपने को राम का वंशज मानती है तथा उनका पूजन करती है। इस प्रकार रामकथा सर्वव्यापक है और मर्यादा पुरुषोत्तम राम के आदर्श चरित्र को सर्वत्र सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।

●

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

राम कथा की लोकप्रियता

—तटस्थ गोस्वामी

वाल्मीकि–कृत रामायण के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल के बाद (चौथी शताब्दी ई० पू० के कई शताब्दियों पहले) इक्ष्वाकु वंश के रामचरित से ही भारतीय आख्यान काव्य की उत्पत्ति हुई थी।

चौथी शताब्दी ई० पू० तक भारत में आख्यान काव्य का पर्याप्त प्रचार हो चुका था। उसी समय महाकवि वाल्मीकि ने रामचरित विषयक स्फुट आख्यान काव्य एक ही कथासूत्र में पिरोकर महाकाव्य 'रामायण' की सृष्टि की। उन्होंने अपने इस महाप्रबन्ध काव्य का नाम 'रामायणम्' रखा। काव्य साहित्य के परवर्ती विकास को ध्यान में रखकर हम निस्संकोच कह सकते हैं कि रामायण की रचना भारतीय साहित्य के इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण घटना है।

प्राचीन भारत में कुशीलव सारे देश में घूमते थे और जन-साधारण को आख्यान काव्य सुनाकर जीविका चलाते थे। इस कारण वे 'काव्योपजीवी' के नाम से भी विख्यात थे। वाल्मीकि संभवतः स्वयं ही कुशीलव थे।

कुशीलवों को किसी हस्तलिपि की आवश्यकता नहीं थी, रामायण उन्हें कंठस्थ थी। जिन गायकों में काव्य कौशल था, वे अपने श्रोताओं की रुचि का ध्यान रखकर लोकप्रिय प्रसंग बढ़ाने और दोहराने लगे। इस तरह इस आदिकाव्य का कलेवर धीरे-धीरे बढ़ने लगा।

रामायण बहुत समय तक मौखिक रूप से ही प्रचलित रही। बाद में उसे भिन्न-भिन्न परम्पराओं के आधार पर लिपिबद्ध किया गया। वाल्मीकि की रचना के संबन्ध में आरम्भ से ही लोगों की यह धारणा रही कि यह रचना अमर है। एक प्राचीन श्लोक इस प्रकार है :—

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥

जब तक पहाड़ खड़े रहेंगे और पृथ्वी पर नदियां बहेंगी, तब तक राम कथा दुनिया में प्रचलित रहेगी।

वास्तव में रामायण न केवल संस्कृत साहित्य का प्रथम महाकाव्य है, बल्कि उसकी कथावस्तु भी समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्य में व्याप्त है। रामायण के द्वारा वाल्मीकि ने भारतीय जन-साधारण के सामने मर्यादा पुरुषोत्तम राम को एक चरित्रवान्, सत्यप्रतिज्ञ तथा आदर्श क्षत्रिय के रूप में प्रस्तुत किया। रामायण की लोकप्रियता के साथ ही राम का भी महत्व बराबर बढ़ता रहा। दूसरी ओर उस समय भारत में अवतारवाद की भावना फैलती जा रही थी। इसका परिणाम यह हुआ कि संभवतः प्रथम शताब्दी ई० पू० से कृष्ण की भांति राम को भी विष्णु का अवतार माना गया।

इसके अतिरिक्त बौद्धों ने राम को बोधिसत्व मानकर राम कथा को अनेक जातकों की कथावस्तु के रूप में प्रस्तुत किया। जैनों ने भी राम कथा को अपनाया और राम, लक्ष्मण तथा रावण को अपने विशिष्ट महापुरुषों में स्थान दिलाया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दूसरी, तीसरी शताब्दी ई० तक राम कथा भारतीय संस्कृति में इतने व्यापक रूप से फैल गयी थी कि साहित्यिक क्षेत्र के अतिरिक्त, राम को उस समय के तीन प्रमुख भारतीय धर्मों में भी एक निश्चित स्थान प्राप्त हुआ–ब्राह्मण धर्म में विष्णु के अवतार, बौध धर्म में बोधिसत्व और जैन धर्म में आठवें बलदेव के रूप में।

आधुनिक भारतीय भाषाओं का सर्वप्रथम महाकाव्य पूर्णरूपेण रामायण ही ठहरता है। यों बहुत सी परवर्ती रचनाएं भी राम कथा से संबन्ध रखती हैं और उन भाषाओं का सबसे लोकप्रिय काव्य ग्रंथ प्रायः कोई न कोई रामायण ही है। इस दृष्टि से कम्ब-कृत तमिल रामायण, तेलुगु द्विपदरामायण, मलयालम रामचरितम्, कन्नड तीखे–रामायण, असमिया माधवकंदली रामायण, बंगाली कृतिवास–रामायण, हिन्दी में रामचरितमानस, उडिया रामदास, रामायण और मराठी भावार्थ रामायण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रांतीय विशेषताओं के बावजूद इन सब रचनाओं पर वाल्मीकि रामकथा की छाप अत्यन्त स्पष्ट है।

रामकथा की लोकप्रियता

वाल्मीकि ने अपने समय में प्रचलित रामविषयक गाथाओं के आधार पर रामकथा का एक ऐसा रूप प्रस्तुत किया, जिसकी बराबरी विश्व साहित्य का कोई भी कथानक नहीं कर सकता। मानव हृदय को आकर्षित करने की जो शक्ति रामकथा में है, वह अत्यन्त दुर्लभ है। 'मैथिलीशरण गुप्त' 'साकेत' में वाल्मीकि की इसी बात की ओर संकेत करते हैं :

राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है॥

राम कथा की लोकप्रियता का दूसरा कारण यह है कि वाल्मीकि ने अपने काव्य में कला और आदर्श का अभूतपूर्व समन्वय स्थापित किया, इससे आदर्शप्रिय भारतीय जनता प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी। राम कथा के इस लोक संग्रही भाव का उल्लेख आज भी किया जाता है। आज राम कथा, काव्य की कथावस्तु मात्र न रहकर आदर्श जीवन का दर्पण भी बन गई है। भारत की समस्त आदर्श भावनाएं राम कथा में, विशेषतः मर्यादा पुरुषोत्तम राम तथा पतिव्रता सीता के चरित्र में केन्द्रीभूत हुई हैं। यही कारण है कि राम कथा भारतीय संस्कृति के आदर्शवाद का उज्ज्वलतम् प्रतीक बन गयी है।

अवतारवाद के कारण राम कथाओं में अलौकिकता की मात्रा अवश्य बढ़ने लगी थी किन्तु फिर भी शताब्दियों तक राम कथा का मुख्य दृष्टिकोण धार्मिक न होकर आदर्शवादी तथा साहित्यिक ही रहा। राम भक्ति के प्रादुर्भाव से राम कथा के आदर्शवाद को बहुत बल मिला। ●

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दीपावली पर विशेष–

कैसा था वह रामराज्य ?

—योगेशचन्द्र शर्मा

परम्परागत मान्यता के अनुसार रामराज्य, त्रेतायुग की घटना है। मगर इसका निश्चित समय निर्धारण करना कठिन है। कुछ लोग इसे लाखों वर्ष पुरानी घटना मानते हैं। लेकिन यह सम्भव प्रतीत नहीं होता। अधिकांश विद्वानों के मतानुसार यह लगभग तीन हजार वर्ष पुरानी घटना है। यह निश्चित है कि रामराज्य तथा रामायण की रचना समकालीन घटनाएँ हैं। रामायण के रचयिता आदि कवि वाल्मीकि स्वयं राम के समकालीन थे। अपने निष्कासन के उपरान्त सीता, वाल्मीकि के आश्रम में जाकर रही थीं और वहीं पर लव तथा कुश का जन्म हुआ था। अयोध्याकाण्ड में किये गये एक वर्णन (56:16) के अनुसार स्वयं राम और लक्ष्मण भी एक बार वाल्मीकि के आश्रम में गये थे। इस प्रकार रामायण की सभी घटनाएं यथार्थ सत्य हैं। रचयिता ने उन्हें स्वयं देखा है या अनुभव किया है। इसलिए रामराज्य में वस्तुस्थिति की जानकारी हमें वाल्मीकि की 'रामायण' से प्राप्त होती है, तुलसीदास के 'रामचरित मानस' से नहीं। 'रामचरित मानस' की रचना काफी समय बाद सम्वत 1631 में हुई। इसके अतिरिक्त 'रामचरित मानस' में पौराणिकता, आदर्श और भक्ति की प्रधानता है; जबकि 'रामायण' में इतिहास, राजनीति और यथार्थ की प्रधानता है। रामायण से हमें तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों की भी पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है।

आधुनिक परिभाषा के अनुसार, रामराज्य को जनतन्त्र या गणतन्त्र नहीं कहा जा सकता। वह मर्यादित राजतन्त्र था। मगर वह एक ऐसा आदर्श राजतन्त्र था, जिसमें श्रेष्ठ जनतन्त्र व कुलीनतन्त्र की विशेषताओं को भी सम्मिलित कर लिया गया था। सुप्रसिद्ध यूनानी चिन्तक प्लेटो ने अपनी पुस्तक 'रिपब्लिक' में एक ऐसे दार्शनिक राजा की कल्पना की थी, जो प्रतिभा का प्रतीक है और जो अपने देश तथा समाज के लिए, सभी व्यक्तिगत सुख सुविधाओं को त्याग देता है। रामराज्य का राजा इससे भी आगे बढ़ा हुआ है। प्लेटो का दार्शनिक राजा अपनी प्रतिभा के सामने किसी भी कानून या परंपराओं की मर्यादा को स्वीकार नहीं करता। इसके विपरीत राजा राम, प्रतिभा व कुशलता के धनी होते हुए भी राज्य के कानून और समाज की मर्यादाओं का पालन करते हैं। राज्य के द्वारा बनाये गये कानून केवल जनता के लिए ही नहीं, राजा के लिए भी होते हैं। राम 'मर्यादा पुरुषोत्तम' हैं। अयोध्याकाण्ड के सर्ग 69 में, राम, जाबालि ऋषि को कहते हैं–'मर्यादा का उल्लंघन करने वाला मनुष्य तो पापाचरण युक्त होता है। उसका चरित्र दूसरों को भ्रष्ट दिखलाई देता है और वह सज्जनों में सम्मानित नहीं होता।' राजा राम इस बात को स्वीकार करते हैं कि 'राजा का आचरण जिस प्रकार का होता है, प्रजा का आचरण भी उसी प्रकार का होता है।' इसलिए अपनी प्रजा को कोई बात कहने से पहले वे स्वयं उस पर अमल करते हैं।

महात्मा गांधी सहित अनेक विचारकों ने रामराज्य की प्रशंसा की है और उसे अपनाने के लिए, अपनी उत्कट अभिलाषा व्यक्त की है। रामराज्य को अपनाने से उनका अभिप्राय, जनतन्त्र को हटाकर, राजतन्त्र की स्थापना से नहीं था। रामराज्य से उनके अभिप्राय में दो बातें प्रमुख थीं। प्रथम देश के शासक और पदाधिकारी राम के समान आदर्श और 'मर्यादा पुरुषोत्तम' हों। वे अपने स्वयं के स्वार्थों में लिप्त न रहकर केवल जनता का ही हित चिन्तन करें। दूसरे, देश की जनता उसी प्रकार से सुखी और समृद्धशाली हो, जिस प्रकार वह रामराज्य में थी। वाल्मीकि ने रामायण में जनता की खुशहाली की चर्चा की है। उस समय पुरवासी और जनपद वासी अत्यन्त हर्षित थे। समयानुसार वृष्टि होती थी और सदा सुख देने वाली पवन चलती थी। नगरों और देहातों में हृष्ट-पुष्ट मनुष्य रहते थे। किसी की असामयिक मृत्यु नहीं होती थी और न कोई किसी प्रकार के रोग से पीड़ित था। राम के शासन-काल में न तो कोई स्त्री विधवा हुई और न किसी को सांप ने काटा। डाकुओं और चोरों का तो रामराज्य में नाम तक न था। श्रीराम उदास होंगे, इस विचार से आपस में लोग एक दूसरे का जी तक नहीं दुःखाते थे। चारों वर्णों में से कोई भी लोभी या लालची नहीं था। सब अपना-अपना काम करते हुए अपने कार्यों से सन्तुष्ट रहा करते थे। रामराज्य में सम्पूर्ण प्रजा धर्मरत थी और झूठ से दूर रहती थी। सभी व्यक्ति शुभ लक्षणों से युक्त और धर्मपरायण थे।' (उत्तरकांड सर्ग 43 और 99)

तुलसीकृत रामचरित मानस में भी 'दैहिक, दैविक, भौतिक तापा, राम राज नहीं काहुहि व्यापा' कहकर रामराज्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा की गई है। तुलसी के अनुसार सभी अयोध्यावासी सुन्दर और स्वस्थ थे और देव दुर्लभ भोगों को भोगते थे।

रामायण में अराजक राजा की काफी निन्दा की गई है। उसके अनुसार 'अराजक राष्ट्र की वैसी दशा होती है, जैसी कि जलरहित नदियों की, बिना वृक्ष के वन की और गोपाल रहित गौओं की। अराजक स्थिति में कोई अपना नहीं होता। वहां मछलियों की तरह मनुष्य एक दूसरे को खा जाते हैं। संसार में अच्छे बुरे का निर्णय करने वाला न हो तो यह संसार अन्धकारमय बन जाये और कुछ भी दिखलाई न दे।' (अयोध्या कांड सर्ग 43)

राज्य के लिए जहाँ राजा आवश्यक है, वहां राजा के ऊपर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व भी है। एक योग्य और गुणी व्यक्ति ही इन उत्तरदायित्वों को वहन कर सकता है। अयोध्या काण्ड के सर्ग-3 में, दशरथ राम को उपदेश देते हुए कहते हैं–'पुत्र, यद्यपि तुम राजगुणों से युक्त हो तथापि मैं, तुम्हें स्नेहवश हितकारी बात बतलाता हूं–(1) तुम और अधिक विनय को धारण करके सदैव जितेन्द्रिय रहो। तुम काम और क्रोध

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

से उत्पन्न होने वाले व्यसनों को त्यागे रखना (2) दूतादि द्वारा परोक्ष-रूप से सत्यासत्य का भेद लेना एवं राज्य कर्मचारियों तथा प्रजा का न्याय करते हुए उन्हें प्रसन्न रखना। जो राजा प्रजा से प्रेम करता हुआ और प्रजा को अपना प्रशंसक बनाता हुआ राज्य करता है, उसकी प्रजा मित्र बनकर आनन्दित रहती है।' अयोध्याकांड के 100वें अध्याय में कहा गया है–'राजाओं को पवित्र होना चाहिए। उन्हें वृद्धों, विद्वानों और चरित्रवान व्यक्तियों का आदर करना चाहिए। राजाओं को अनुशासित दैनिक जीवन बिताना चाहिए और उन्हें व्यसनों तथा बुरी प्रवृतियों से दूर रहना चाहिए।'

रामराज्य में अत्याचारी शासक के लिए कोई स्थान नहीं। ऐसे राजा को न केवल निष्कासित ही किया जा सकता था, बल्कि उसे मृत्यु-दंड भी दिया जा सकता था। राजा सगर ने अपने ज्येष्ठ पुत्र असमंजस' को इसी प्रकार राज्य से निकाल दिया था। 'वेन' नाम के राजा की हत्या कर दी गयी थी।

रामराज्य में संसद का भी उल्लेख है। 'रामायण' के अयोध्याकाण्ड में इसे 'परिषद्' की संज्ञा दी गई है और युद्धकांड में 'समिति' और 'संसद' की। संसद के सदस्यों को आर्यगण, आर्यमित्र तथा सभासद जैसे आदर सूचक शब्दों से संबोधित किया जाता था। संसद में अमात्यों तथा प्रतिष्ठित ब्राह्मणों के अतिरिक्त क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा किसानों व नगरवासियों के प्रतिनिधि भी सम्मिलित होते थे। संसद की बैठक विशेष अवसरों पर ही आमन्त्रित की जाती थी। उदाहरणार्थ युवराज का वरण, युद्ध और सन्धि का निर्णय तथा सम्राट के उत्तराधिकारी का निर्वाचन आदि। संसद के सदस्यों को पूर्ण वैचारिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी और उनके निर्णय के अनुसार ही कार्य किया जाता था।

राजा दशरथ ने संसद का विशेश अधिवेशन उस समय आमन्त्रित किया, जब वृद्धावस्था के कारण वे अपना शासन भार अपने बड़े पुत्र राम को सौंपना चाहते थे। उन्होंने सभा के सामने अपना प्रस्ताव इन शब्दों में रखा–'पराक्रम में इन्द्र के समान और शत्रुओं पर विजय पाने वाले मेरे ज्येष्ठ पुत्र राम सब गुणों में, मेरे अनुयायी सिद्ध हुए हैं। चन्द्रमा के समान प्रजा पालकों में श्रेष्ठ, उस पुरुष श्रेष्ठ को मैं युवराज पद पर आयुक्त करना चाहता हूं। यदि यह विचार आप लोगों के लिए अनुकूल सिद्ध हो तो आप इसकी अनुमति दीजिए।' जब संसद ने सर्वसम्मति से इस प्रस्ताव को स्वीकार किया तो भी राजा दशरथ ने उन्हें पुनः कहा–'आपने जो मेरे कथन को सुनकर राम को राजा बनाने की इच्छा प्रकट की है, उसमें मुझे यह सन्देह है कि आपने मेरे प्रस्ताव को मेरे कहने से मान लिया है, अपनी आन्तरिक इच्छा से प्रेरित होकर नहीं।'

इस पर सभा के सदस्यों ने राम को शासन भार सौंपने का पुनः पुरजोर समर्थन किया, तभी राजा दशरथ ने अपने प्रस्ताव को स्वीकृत माना। तत्पश्चात् राजा दशरथ ने राज्याभिषेक की तैयारी की और स्वयं राम से कहा–तुम मेरे ज्येष्ठ पुत्र हो और तुमने समस्त प्रजा को अपने गुणों से अनुरागी बना लिया है। अतः तुम युवराज पद प्राप्त करो, क्योंकि अपनी इच्छा से प्रजा ने ही यह निश्चय किया है कि तुम राजपद के योग्य हो। (अयोध्याकांड सर्ग-3)

राजा अपना दैनिक प्रशासन, अमात्यों की सलाह और सहायता से किया करते थे। 'रामायण' में आठ अमात्यों की चर्चा की गई है, जो महात्मा, धनुर्वेदवेत्ता, दृढ़विक्रमी, कीर्तिमान, सावधानचित्त, आज्ञाकारी, तेजस्वी, क्षमाशील, यशस्वी, इन्द्रियजीत, सत्यवादी तथा हँसकर बात करने वाले थे। समय पड़ने पर वे न्यायानुसार अपने पुत्रों को भी दंड दे सकते थे। अमात्यों के नाम इस प्रकार थे–धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, प्रकोप, धर्मपाल और सुमन्त। वशिष्ठ की यहां पर विशेष स्थिति थी। वे राजपुरोहित थे। सभी अमात्य उनके निर्देशन में काम करते थे। अस्थायी रूप में राजा की नियुक्ति भी उनके अधिकार क्षेत्र में थी। राजा दशरथ की मृत्यु के उपरान्त वशिष्ठ ने ही भरत को ननिहाल से बुलाकर शासन कार्य सौंपा था।

न्यायाधीशों को 'धर्मपालक कहा जाता था। वे पर्याप्त जाँच-पड़ताल और सोच-विचार कर फैसला किया करते थे। अन्तिम निर्णय का अधिकार सम्राट को था। न्यायाधीश के रूप में उसके आसन को 'धर्मासन' कहा जाता था। यूं राम-राज्य में अपराध, अपवाद स्वरूप ही हुआ करते थे। जनता सर्वत्र स्वच्छन्द और सुख से विचरण किया करती थी। राम राज्य में गुप्तचर विभाग भी था। गुप्तचरों का, अपराधों की जांच-पड़ताल के अतिरिक्त प्रमुख कार्य यह देखना था कि राजा तथा राजनीतिक व्यवस्था के बारे में जनता के क्या विचार हैं। राजा, नियमित रूप से अपने विश्वस्तचरों से मिलता तथा जनता की शिकायतों को दूर करने की कोशिश करता। राज्य में सुव्यवस्था को बनाये रखने के लिए सैनिकों की भी व्यवस्था थी। प्रकाश के लिए स्थान-स्थान पर दीप स्तम्भ बने हुए थे।

रामराज्य में जनता से कर वसूल किये जाते थे। मगर इस सम्बन्ध में नीति यह थी कि जनता से वसूल किये गये कर को जनता की सुख सुविधा पर ही व्यय किया जाये। रामराज्य में प्रत्येक व्यक्ति को विचार तथा अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता प्राप्त थी। राजा की नीति और कार्यों पर कोई भी व्यक्ति टीका-टिप्पणी कर सकता था। राजा राम ने एक बार अपने सभासदों से कहा–'यदि मैं अनीति की बात कहूं तो मुझे निर्भय होकर रोक दो। परन्तु अनुशासन मानना समस्त प्रजा का कर्तव्य है।' राम का यह कथन, रामराज्य में अनुशासन की भावना को भी प्रकट करता है। मगर अनुशासन का अर्थ न्यायसंगत विरोध का अभाव नहीं है। रामायण में इस प्रकार के विरोध स्वरूप जनता की हड़ताल का भी उल्लेख है। जब कैकेयी की दुर्बुद्धि के कारण प्रजा के निर्णय के अनुसार राम को राजा नहीं बनाया जा सका तो जनता ने पूर्ण हड़ताल की। राजा दशरथ की मृत्यु पर भी प्रजा ने लम्बी हड़ताल की।

रामराज्य में राजा का केवल शुद्ध और सदाचारी होना ही पर्याप्त नहीं माना जाता था, बल्कि यह भी आवश्यक था कि जनता उसे सदाचारी

(शेष पृष्ठ 16 पर)

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पवित्र सीता को वापस लाओ

—रामनारायण उपाध्याय

राम कथा को पढ़ने और उससे आत्मसात होने के लिए भावना की आँख चाहिए। जो कुछ हो चुका, उसका वर्णन तो इतिहास में आ जाता है, लेकिन मनुष्य ने अपने मनोजगत में जो कुछ सोचा-विचारा अनुभव किया, उस सबका वर्णन जन-मन ने अत्यंत ही सूक्ष्मता से लोक-साहित्य में सहेज कर किया है। इतिहास में महज भौतिक घटनाओं का वर्णन मिलता है। चाहे अशोक हों या अकबर उन्हें लौटाया नहीं जा सकता। उनकी पुनर्व्याख्या भी नहीं की जा सकती। जबकि इतिवृत्ति को निरन्तर भोगा जा सकता है। उसकी नये ढंग से मानवीय परिप्रेक्ष्य में पुनर्व्याख्या भी की जा सकती है। साहित्य महज व्यक्तिगत आधार पर भोगी गई घटनाओं का लेखा-जोखा नहीं है, वरन् समष्टिगत अनुभूतियों का अपौरुषेय वाङ्मय है।

लोक साहित्य में सीता के निर्वासिन की व्यथा हर पिता अपने अन्दर अनुभव करता है। उसमें दशरथ के घर राम का जन्म होने पर, हर घर राम-जन्म की बधाई गाई जाती है।

लोक साहित्य में चमत्कार या अलौकिकता के लिए कोई स्थान नहीं है। उसमें सीता के विवाह के लिए धनुष-यज्ञ की आवश्यकता महसूस नहीं की गई क्योंकि ऐसा करने पर धनुष किसका था, कहाँ से आया और अगर राम उसे तोड़ सकते थे, तो दूसरे क्यों नहीं, ऐसे अनेक प्रश्न उठ खड़े होते। जब सीता के विवाह को स्वयंवर कहा गया तो स्वयंवर में तो लड़की स्वेच्छा से अपने पति का वरण करती है। उसमें धनुष तोड़ने की शर्त कहा से आ गई!

लोक साहित्य में सीता के विवाह के माध्यम से जिसके घर भी कुंवारा लड़का या कुंवारी लड़की बैठी हो उस पिता की व्यथा दर्शाई गई है। उसमें यह भी नहीं कि लड़की वाला ही अपनी बेटी के विवाह का प्रस्ताव लेकर जाये वरन् लड़के वाला भी अपने बेटे के लिए योग्य बहू की तलाश में लड़की वाले के घर प्रस्ताव रख सकता है। पिता चाहे लड़की का हो या लड़के का, अपने बेटे-बेटी की शादी के लिए दोनों को चिन्ता समान होती है इसीलिए लोकगीतों की दुनिया में राजा दशरथ स्वयं घोड़े पर बैठकर जनक के दरवाजे पर पहुंचते हैं और आवाज लगाते हैं; हे ऋषि जनक! कहाँ हैं आप! देखो आप के द्वार पर दशरथ खड़े हैं।"

जनक अपने एक हाथ में गंगाजल और दूसरे हाथ में आसन लेकर आते हैं और राजा दशरथ के पांव पखारकर उन्हें सिहासन पर बैठाकर पूछते हैं, 'राजन्' अयोध्या में सब कुशल से तो हैं।'

दशरथ कहते हैं, हे ऋषिवर! अयोध्या में सब कुशल से हैं और आपकी कुशलता चाहते हैं। अगर कोई कुशल नहीं हैं तो रानी कौशल्या। क्योंकि उसके घर राम कुंवारे बैठे हैं। मैं तुम्हारी बेटी सीता को अपने बेटे राम के लिए बहू के रूप में माँगने आया हूँ।

जनक कहते हैं; 'राजन्! इससे बढ़कर मेरे लिए सुख की बात और क्या हो सकती है, लेकिन अगहन का महीना अच्छा नहीं है। जरा चैत-वैशाख आने दीजिए फिर सीता को बहू बनाकर अयोध्या ले जाइए।

लेकिन दशरथ एक दिन के लिए भी रुकने को तैयार नहीं होते और अगहन में ही ब्याह की तिथि निकालकर राम और सीता का विवाह सम्पन्न करा लेते हैं।

लेकिन शुभ घड़ी और शुभ लग्न में विश्वास करने वाला जन-मन यहाँ भी चोट खा जाता है और जल्दबाजी में किये गये विवाह के कारण सीता का हरण और दशरथ का मरण हो जाता है और चीखते हुए क्रौंच पक्षी की तरह एक दूसरे के विरह में तड़पते राम-सीता के पंखों की फड़-फड़ाहट समूची रामायण में सुनी जा सकती है।

लोक साहित्य में जीवन को एक सम्पूर्ण घटक के रूप में देखा गया है। उसमें अगर पुत्र है तो माता-पिता है। बहू है तो सास-ससुर है। भाई है तो बहन अवश्य होनी चाहिए। इसीलिए लोक साहित्य में राजा दशरथ के चार पुत्रों के रूप में चार भाईयों के साथ उनकी एक बहन भी दर्शाई गई है। राम जब वनवास से लौटकर घर आते हैं, तो सीता का मान-सम्मान देखकर नन्द ईर्ष्या से जल उठती है और उसे नीचा दिखाने का उपाय सोचने लगती है। एक दिन एकान्त पाकर वह सीता से पूछती है, "भौजी! रावण तो बड़ा बलशाली होगा। वह कैसा था, जरा उसका चित्र बनाकर दिखाओ ना!"

सीता कहती है, "मैंने तो उसे देखा तक नहीं। वह जब मुझे डराने-धमकाने के लिए आता था, तब सिर्फ उसकी उठी हुई अंगुली देखी है।"

ननद ने कहा, 'उस अंगुली का ही चित्र बना दो, उस से मैं रावण का अन्दाज लगा लूंगी।"

लाचार सीता ने रावण की अंगुली का चित्र बना दिया। ननद को ऐसी कला आती थी कि व्यक्ति का कोई-सा भी अंग देखकर उसके आधार पर उसका पूरा चित्र बना लेती थी। सो उसने अंगुली के आधार पर उसका पूरा चित्र बनाकर राम को चुगली लगाते हुए कहा, "देखो भैया, तुम्हारी पत्नी रावण का चित्र बना रही है।" और इस छोटी सी बात पर राम-सीता को घर से निकाल देते हैं। इसमें न तो धोबी आता है न किसी शाप का बहाना रहता है। वरन् मानवीय कमजोरियों का जीवन्त चित्रण है।

हिन्दी साहित्य भले ही राम का काल-निर्धारण करने में उलझा रहे लेकिन अपने निर्वासिन के दिनों सीता जिस वाल्मीकि के आश्रम में रही थी, आज भी वहाँ के थारू जाति के लोग सीता का ऐसा आँखों देखा वर्णन करते हैं, मानों अभी कल की घटना हो।

अगर कोई उनसे पूछे कि वाल्मीकि का आश्रम कहाँ था तो वे बताते

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

हैं, ठीक इसी जगह पर वाल्मीकि अपनी कुटिया बनाकर रहते थे। उनके पास की कुटिया में सीता माता रहती थीं। इसी के सामने की पगडण्डी से सीता माता रोज तमसा नदी में स्नान करने के लिए जाती थीं। उनके पाँवों के निशान आज भी यहाँ देखे जा सकते हैं। ये जो सामने पेड़ हैं इसी की पत्तियाँ खाकर सीता माता ने अपना जीवन बिताया। उन्हीं के नाम से इसका नाम 'सीता-पत्ती' है। आप भी चखकर देखिये। पहले यह कड़वी लगती है लेकिन उस पर से पानी पीने पर पानी मीठा लगने लगता है।

आज भी सीता के निर्वासन को लेकर मिथिलावासी अपनी बेटी पश्चिम में नहीं ब्याहते और अगहन में ब्याह नहीं रचाते। कहते हैं, हमने अपनी एक बेटी अवध में दी थी तो उसका सारा जीवन बरबाद हो गया। यह बाप की व्यथा है।

सीता को लौटाने के लिए आज भी मिथिला की स्त्रियाँ एक स्वाँग खेलती हैं। इसमें वे अपनी साड़ी को धोती की तरह कस कर कमर से बाध लेती हैं, सिर पर पगड़ी बाँधती हैं और हाथ में छड़ी लेकर अपने-अपने पतियों को ललकारती हैं।

मल्लाह की पत्नी कहती है, 'हे प्रिय ! मेरी बात सुनो। अपना जाल महा जाल फेंको और मछली की तरह तड़पती सीता को वापस ले आओ।

नाई की पत्नी कहती है, 'प्रिय मेरी बात सुनो, और नाखून काटने वाली नहरनी की तरह कृषकाय सीता को वापस ले कर आओ।

पंडित की पत्नी कहती है, 'हे प्रिय ! मेरी बात सुनो और पोथी की तरह पवित्र सीता को वापस ले आओ।'

और अन्त में क्षत्रिय की पत्नी कहती है, 'हे प्रिय! मेरी बात सुनो और सीता को वापस लाकर पूरी गरिमा के साथ अपने पति के पास स्थान दिलाओ। यदि तुम ऐसा नहीं कर सकते तो अपने चमड़े का ढोलक मढ़वा लो।

कैसा आक्रोश है जन-मन में सीता के लिए। कोई युग का राम ही उनकी माँग पूरी कर सकता है।

●

(पृष्ठ 6 का शेष)

रखकर लाभ-शुभ अक्षर अंकित कर, स्वस्तिक प्रतीक बनाकर, हम लक्ष्मी के सच्चे आराधक बन जाते हैं। हमारी यह आराधना व्यक्तिगत जीवन के लिए कल्याणकारी है। या नहीं यह विवाद का विषय है किन्तु सच्चे लक्ष्मी पूजक तभी बन सकते हैं, जब हम अपने पुरुषार्थ से कारखानों, खेतों, दफ्तरों में मेहनत का दीया जलायें। तभी राष्ट्रलक्ष्मी सही मायने में प्रसन्न होगी और घर-घर में समृद्धि की वास्तविक दिवाली होगी। ●

(पृष्ठ 9 का शेष)

जाते हैं, मेले लगते हैं। जबकि उत्तर भारत में दुर्गा-पूजा का यह त्यौहार दशहरे के साथ मनाया जाता है। इस देवी के दस हाथ दिखाये जाते हैं। उनके दायें लक्ष्मी और सरस्वती तथा बाएं में गणेश और कार्तिकेय और पांवों में मरा हुआ महिषासुर दिखाया जाता है। दशहरे पर सजायी गयी दुर्गा की मूर्तियों को विधि-विधान के साथ जल में प्रवाहित किया जाता है इससे पूर्व दुर्गा माता के भक्त नौ दिन तक व्रत रखते हैं। अंतिम यानी दसवें दिन–रात को जागरण किया जाता है और पूरी रात भक्तगण मां दुर्गा का भजन-कीर्तन करते हैं। अष्टमी और नौमीं के दिनों व्रत रखने वाले भक्त सात, नौ या ग्यारह कन्याओं को भोजन कराते हैं। इन कन्याओं को देवी-शक्ति का प्रतीक मान कर भक्त इनके पांव धोते हैं।

इस प्रकार शक्ति, शान्ति, वैभव और विद्या की प्रतीक मानी जाने वाली इस देवी की पूजा घर-घर में की जाती है। कुछ भारतीय मूल के लोग मां दुर्गा की पूजा विदेशों में भी करते हैं। ●

(पृष्ठ 14 का शेष)

समझे। जनमानस में अपनी शुद्धता और पवित्रता को प्रमाणित करने के लिए, राजा को हर प्रकार का त्याग एवं बलिदान करने के लिए तैयार रहना होता था। ऐसी ही परीक्षा की एक घड़ी उस राजा राम के सामने उपस्थित हुई, जब एक गुप्तचर ने आकर उन्हें सन्देश दिया कि 'रावण के द्वारा सीता का हरण और राजमहिषी के रूप में सीता की पद-स्थिति से लोगों में कुछ अपवाद फैल गया है। वे कहते हैं कि अब हम लोगों को भी अपनी स्त्रियों के दोषों की उपेक्षा करनी पड़ेगी, क्योंकि जैसा राजा करता है, उसकी प्रजा भी वैसा ही व्यवहार करती है।'

राम के सामने विकट स्थिति थी। सीता की पवित्रता के बारे में वे विश्वस्त थे। मगर प्रश्न जनता के विश्वास का था। राजा के रूप में, उन पर एक बड़ा उत्तरदायित्व था, जिसके सामने उनकी व्यक्तिगत भावनाओं या सुख-दुःख का कोई महत्व नहीं था। उन्होंने सीता परित्याग का निश्चय किया और उस निश्चय को क्रियान्वित भी किया। 'रघुवंश' में आये एक उल्लेख के अनुसार स्वयं महर्षि वाल्मीकि को भी श्रीराम के इस आचरण पर बड़ा क्रोध आया था। मगर, मर्यादा पुरुषोत्तम राजा राम अपने निर्णय पर अटल थे।

रामराज्य में सदैव नैतिकता और धर्म के सिद्धान्तों का पालन किया जाता था। युद्ध के भी अपने कुछ नियम थे, जिनका पालन किया जाता था। युद्ध काण्ड से सर्ग 47 में राम ने लक्ष्मण से युद्ध नियमों की चर्चा करते हुए कहा–'युद्ध न करने वालों को, जान बचाने के लिए छिपे हुए को, हाथ जोड़कर शरण में आये हुए को, भागते हुए को और उन्मत्त व्यक्ति को मारना उचित नहीं।' ●

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सीतामढ़ी और वाल्मीकि आश्रम

—रामनाथ बख्शी

वाराणसी क्षेत्र में ही एक स्थान का नाम सीतामढ़ी है। वहीं आदिकवि वाल्मीकि का आश्रम था, जहाँ वाल्मीकि ने रामायण की रचना की थी और जगज्जननी सीता ने अपने वनवास का जीवन बिताया तथा लव-कुश को जन्म दिया और वहीं भूमिगत हुईं।

राम द्वारा निर्वासित सीता की करुण कहानी से सम्बन्धित यह स्थल भारतीय साहित्य और संस्कृति से जुड़ा हुआ है। इस स्थान पर अपना डाकू जीवन त्यागने के बाद महर्षि वाल्मीकि के जीवन में जो मोड़ आया—और जो अद्भुत घटना घटी उससे संस्कृत काव्य रचना का जो आधार बना, उसकी बात ही आश्चर्यजनक और विचित्र है। उस वन के एक वृक्ष पर क्रौंच पक्षी के एक प्रणयरत जोड़े को बहेलिये ने बाण का निशाना बनाया, जिससे वह नीचे गिरा। इस दृश्य ने महर्षि वाल्मीकि को ऐसी चोट पहुँचायी और उनके मुँह से सहज ही संवेदना से ओत-प्रोत जो शब्द निकले, वे ही शोक श्लोक के रूप में विश्व में पहले-पहल परिगत हुआ—

मा निषाद प्रतिष्ठाम् त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंच मिथुनादेकम् वधीः काम मोहितम्॥

उसी सीतामढ़ी में प्रतिवर्ष आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा से आषाढ़ शुक्ल नवमी तक लव-कुश के जन्म के उपलक्ष्य में अखिल भारतीय स्तर पर मेला लगता है।

वाराणसी जिले के ज्ञानपुर तहसील के कोनिया ग्राम के प्रवेश द्वार पर गंगा के उत्तरी तट पर सीतामढ़ी नामक यह स्थान है। यहाँ पर वाल्मीकि और जगज्जननी का मन्दिर तथा सीता के हाथों लगाये गये एक वृक्ष का परिवार जीवितावस्था में है। यह वही इलाका है जहाँ राम की सेना परास्त हुई थी और जिसे 'विरहना के सीवान' के नाम से आज भी जाना जाता है। यहाँ वह जगह आज भी मौजूद है जहाँ जानकी धरती की गोद में समा गयी थीं और राम के हाथ उनके केवल केश लगे थे। इस स्थान पर आज भी केश के आकार की बहुत ही नाजुक घास पायी जाती है जिसे लोग सीता के केश कहते हैं। इस क्षेत्र में आज भी वैदेही माता की पूजा होती है। यह वैदेही और कोई नहीं हमारी जानी पहचानी वैदेही हैं।

वर्तमान स्थिति

यहाँ पर खपरैलों की छाजन का एक प्राचीन आश्रम है। उसके बीचो-बीच दो प्रकोष्ठों का एक छोटा सा मन्दिर है। एक प्रकोष्ठ में जानकी और लव-कुश कुमारों की तथा दूसरे में राम, सीता, लक्ष्मण, महर्षि वाल्मीकि और पवन कुमार की मूर्तियाँ हैं। यहाँ एक प्राचीन वट वृक्ष है, जिसे गोस्वामी तुलसीदास ने सीता वट की संज्ञा दी है। कवितावली में उन्होंने लिखा है कि—"देव अभिमत जी समेर प्रीति सेइये, प्रवीन मान तुलसी विचारि वाको बलु है, सुरसरि निकट सुहावनी अवनि सोहं राम रमनी को बटु अलि कामवर है।" जनश्रुति के अनुसार भी यह वट-वृक्ष सीतावट कहा जाता है और सभी इच्छायें पूर्ण करने वाला बताया जाता है। अनेक लोगों को इसकी प्रतीति भी हो चुकी है। इस स्थान पर स्थित सीता वाल्मीकि मन्दिर आदि के भार निर्वाहण के लिए अड़तीस बीघा जमीन काशी नरेश ने दो सौ वर्ष पूर्व दी थी। यह जमीन आज भी मन्दिर के पास है।

सीतामढ़ी और वाल्मीकि आश्रम को लेकर विद्वानों में बड़ा विवाद उठा था जो तुलसीदास द्वारा दिये गये प्रमाण प्रस्तुत करने पर शान्त हुआ और सबको मान लेना पड़ा कि असली सीतामढ़ी यही है और यहीं पर वाल्मीकि आश्रम था तथा आदि कवि वाल्मीकि ने रामायण की रचना भी यहीं की थी और लव-कुश भी यहीं जन्मे थे।

गोस्वामी तुलसीदास संवत् 1682 में चित्रकूट में राम गीतावली एवं कृष्ण दोहावली को पूर्ण कर माघ स्नान के लिये वहाँ से प्रयाग आये थे। प्रयाग से वे गंगा के किनारे-किनारे काशी चले। रास्ते में वे वाल्मीकि आश्रम सीतामढ़ी में आये जहाँ तीन दिन रहने के बाद इस पवित्र स्थान की महिमा में तीन कवित्त बनाये जो इस प्रकार हैं—

[1]

जहाँ वाल्मीकि भये व्याध ते मुनीन्द्र साधु,
मरा-मरा जपे मुनि सिख ऋषि साव की।
सीय को निवास, लव-कुश को जनम थल,
तुलसी छुवत छबि ताप गरं गात की॥
विटप महीप सुरसरि समीप सोहै,
सीता वट देखत पुनीत होत पातकी।
वारिनुर विघपुर बीच विलसति भूमि,
अंकित जो जानकी चरन जल जात की॥

[2]

मरकत बरन परन फल मानिक से,
लसै जटा जूट जनु मख भेष हरु है।
सुखमा को ढेरु कंधो सुकृत सुमेरु कंधो,
सम्पदा एकव मृदु मंगल को घरू है॥
देव अभिमत जो समेति प्रीति सेइए
प्रतीति मानि 'तुलसी' विचारि का को थरु है।
सुरसरि निकट सोहावनि अवधि सोहैं
राम जानकी को वटु कवि काम तरु है॥

[3]

देव धुनी पास, मुनि यास सो निवास जहाँ,
प्राकृत है वट बूट लसति पुरारि है।

(शेष पृष्ठ 26 पर)

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

मानस मंथन

—जगपति सिंह

'भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वासरूपिणौ' के द्वारा तुलसीदास के 'मानस' के बालकाण्ड में गौरीशंकर के प्रति अपनी पुनीत आस्था की अभिव्यक्ति की है। 'रघुवंश' महाकाव्य में कालिदास ने भी पार्वती परमेश्वर की अर्चना की है। उनके 'पार्वती परमेश्वरौ' 'जगतः पितरौ' हैं; अतः जगत के प्रति उनसे वात्सल्यासवित की ही अधिक अपेक्षा की जा सकती है। तुलसी के भवानी-शंकर श्रद्धा-विश्वास के प्रत्यक्ष रूप हैं; जिनके अभाव में तपस्वी हृदयस्थ ब्रह्म का दर्शन नहीं कर पाता। पार्वती श्रद्धा स्वरूपा हैं तथा शंकर विश्वास स्वरूप। सहसा समक्ष एक प्रश्न प्रत्यक्ष हो उठता है, क्या सती को श्रद्धा नहीं माना जा सकता? उत्तर स्पष्ट है कि सती में श्रद्धा जन्य वे गुण उपलब्ध नहीं हैं जो पार्वती में प्रभूत रूप में पाये जाते हैं। श्रद्धा हृदय की सहजासक्ति है, जिसके अन्तर्गत करुणा-ममता-माधुर्य और अगाध विश्वास इत्यादि रत्न-निधि पाये जाते हैं। श्रद्धा की वाटिका में पहुँचने पर ही विश्वास की आलोकमयी पावन रश्मि का आलिंगन हो पाता है और विश्वास श्रद्धा को अपना कर ही पूर्णता का अनुभव करता है।

श्रद्धा आत्म समर्पण की धात्री है। सब कुछ देकर भी कुछ लेने की कामना न करना उसका शाश्वत सौन्दर्य है और इस सौन्दर्य में एक मात्र उत्सर्ग ही प्रतिबिम्बित होता है। विश्वस ही उसका देवता है, विश्वास ही उसकी आराधना है। वह तर्क की कटीली उलझनों से दूर रहने वाली सुकुमारता की मनोरम झांकी है; जिसकी आस्था घनीभूत दुर्दिन को भी जीवन प्रदान करती है। सती में विश्वास का वह आलोक नहीं; वह तो आशंका की कारा में वन्दिनी है; तुलसी का मानस इसका साक्षी है।

कथा त्रेता युग की है। एक बार शम्भु सती के साथ कुम्भज ऋषि के आश्रम में गये। वहाँ वे कुछ दिन राम की कथा में अनुरक्त रहे और फिर मुनि से विदा होकर अपने भवन प्रस्थान किया। उस समय विष्णु का रामावतार हो चुका था। राम पिता की आज्ञा से राज्य परित्याग कर तापस वेश में दण्डकारण्य में विचरण कर रहे थे। छल का अवलम्बन ले रावण ने सीता हरण किया। सीता की खोज करते हुए विरह-विक्षिप्त राम आगे बढ़े। उसी समय शम्भु ने उन्हें देखा; किन्तु कुसमय के कारण 'चिन्हारी' नहीं हो सकी और शिव उन्हें 'जय सच्चिदानन्द जग पावन' कहकर आगे बढ़ गए। शिव का रोम-रोम पुलकित था। उनकी विचित्र अवस्था से सती के अन्तराल में सन्देह का प्रथम अंकुरण होता है कि शंकर देवाधिदेव हैं; ऋषि-तपस्वी तक उनके समक्ष श्रद्धानत होते हैं। उन्होंने नर भूपों को सच्चिदानन्द मानकर अभिवादन किया; तो क्या अकल, अज, अनीह और अव्यक्त ब्रह्म व्यक्त होकर साधारण व्यक्ति की तरह विरह-विक्षिप्त हो सकता है? शिव ने उसके संशय को दूर करने का हर संभव प्रयास किया किन्तु प्रबोधन के सारे प्रयास विफल रहे और सन्देह विश्वास से दूर हटता गया। अन्त में विवश हो शिव को कहना पड़ा···

जौ तुम्हरे मन अति सन्देहू।
तौ किन जाय परीछा लेहू॥

सती सीता का रूप धारण कर उसी मार्ग पर गयीं, जिस मार्ग से राम और लक्ष्मण जा रहे थे। राम ने उन्हें देखते ही प्रणाम करते हुए कहा—

कहेउ बहोरि कहां वृष केतू।
विपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥

प्रवंचना का छद्मावृत्त वपु अनावृत हो गया और सभीत सती शंकर के पास चलीं। यद्यपि उन्होंने शम्भु से इस रहस्य का उद्घाटन नहीं किया, किन्तु उनकी अन्तर्दृष्टि ने रहस्य का पता लगा लिया फिर तो···

यहि तन सतिहि भेट मोहि नाहीं।
शिव संकल्प कीन्ह मन माहीं॥

शिव ने वही किया जो उन्हें करना चाहिए था। यह इड़ा सती का प्रथम सोपान था। द्वितीय सोपान भी सामने आ गया। उसके पिता दक्ष ने यज्ञ प्रारम्भ किया। उस यज्ञ में सभी देवता आमन्त्रित थे···सती और शम्भु को छोड़कर। पति के बहुत समझाने पर भी वह विश्वास की अवहेलना कर पिता के भवन गयीं; जहाँ सम्मान के स्थान पर उन्हें कोरा अपमान मिला। पिता ने उनसे कुशल-क्षेम तक नहीं पूछा। यज्ञशाला में प्रवेश करने पर उन्हें यज्ञ में शम्भु का कोई भाग नहीं दिखायी पड़ा। पति के अपमान का अनुभव कर उनके हृदय में क्रोध की ज्वाला भड़क उठी। फलस्वरूप गोगाग्नि में अपने शरीर को भस्म कर दिया। इस प्रकार स्वयं आहत होकर बुद्धि ने असंख्य प्राणियों को आहत किया। यज्ञशाला में शिव के गण तथा वीरभद्र के कोप का भयंकर रूप सती की बुद्धिकला का परिणाम है।

कोरा ज्ञान बुद्धि का विषय है। बुद्धि में आशंका और विकल्प की दो सुरंगें मिलती हैं। उनके बीच में अविश्वास की धुंधली छाया ही निरंतर नये रंग बदलती हुई दिखाई पड़ती है। पार्वती के रूप में जन्म लेने पर सती की संशय जन्य बौद्धिक विह्वलता समाप्त हो गयी। अब उसमें तर्क-वितर्क और कुतर्क नहीं रह गया तथा वह विनम्रता की विश्वस्त प्रतिमा वन गयी। उसके मन में वह विश्वास-प्रसूत हुआ जो किसी भी विषम परिस्थिति में डिग नहीं सकता था। शिव को वर के रूप में प्राप्त करने हेतु उसने तप का आश्रय लिया। प्रेम की कठिन परीक्षा ली गयी; इस परीक्षण में भी उसका अगाध विश्वास अडिग रहा। अन्ततः विश्वास बाध्य हुआ श्रद्धा को अपनाने के लिये। इस प्रकार इड़ा की तर्क प्रवणता श्रद्धा के मसृण समर्पण में परिवर्तित हो गई। इस सूक्ष्म

(शेष पृष्ठ 26 पर)

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

दीपावली पर विशेष

तंत्र-मंत्र अलौकिकता के प्रतीक

—चक्रधर नलिन

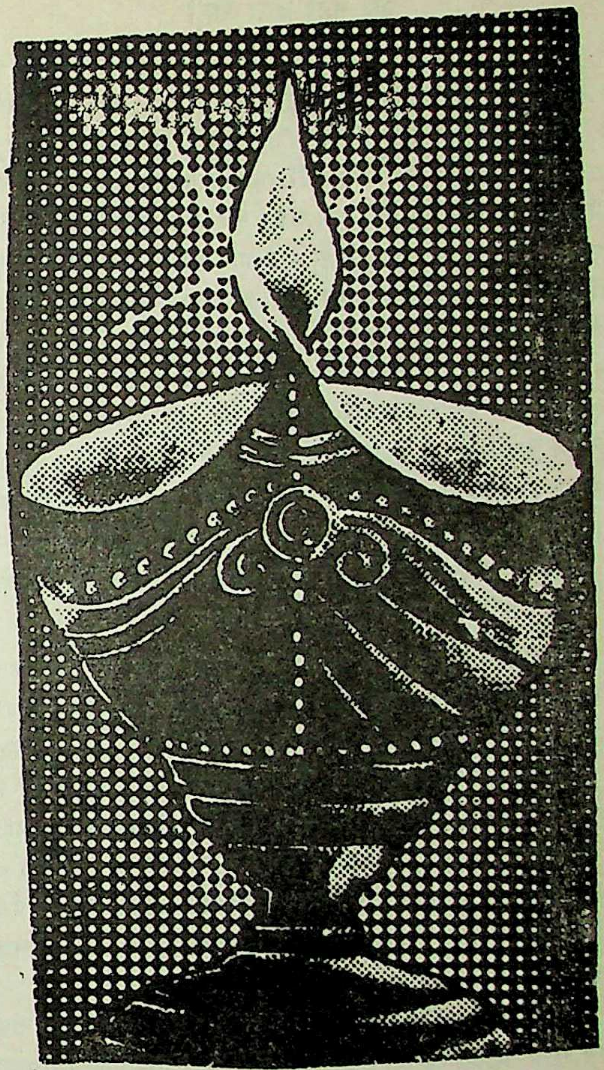

शब्द शक्ति, ध्वनि महिमा और शब्द सम्पत्ति भारतीय ऋषियों, मुनियों की लाखों वर्ष की एकान्त साधना का सुफल है। तंत्र, मंत्र की शक्ति सदा परहित और कल्याण करने से निरंतर बढ़ती है और इसके दुरुपयोग से इसका क्षय होता है। भारतीय तपस्वियों एवं साधकों ने विधिवत् इसे शास्त्र की संज्ञा दी। अनन्तकाल से इस विद्या या साधना का प्रयोग साधक करते रहे हैं। नये जोगियों ने बिना गुरु की कृपा से स्वयंविज्ञ होकर जब इनके प्रयोग किये तो लाभ के स्थान पर हानियाँ अधिक हुईं। तंत्र-मंत्र की सिद्धियाँ बड़ी आध्यात्मिक साधना और उपलब्धि की प्रतीक हैं। भारतीय तंत्र को मुस्लिम फकीरों ने अपनाया और लोक-कल्याण का पथ प्रशस्त किया। साधना साधारण नहीं है। किसी सिद्धि प्राप्ति के लिए तेरह-चौदह घंटे की साधना सालों चलती है। सिद्धि मिलने पर साधक मनचाहा कर सकता है।

18वीं शती के सुखदेव मिश्र एक प्रसिद्ध तांत्रिक थे। अनेक अलौकिक घटनायें उनके जीवन से जुड़ी हुई हैं। 'प्राचीन पंडित और कवि' (लेखक महावीरप्रसाद द्विवेदी) पुस्तक में इनकी तांत्रिक-शक्ति के चमत्कारों का यत्र-तत्र उल्लेख है। इससे तंत्र विद्या की सार्थकता का पता चलता है।

ज्योति शिखा के दर्शन

किशोरावस्था में संस्कृत पढ़ने के लिए वह बनारस गये और एक विद्वान सन्यासी से बड़े परिश्रम से विद्याध्ययन करने लगे। वह रात्रि को अध्यापक सन्यासी के मकान में रहते तथा उनके पास ही शयन करते थे। एक रात वह जग रहे थे कि सहसा सन्यासी का मुंह खुल गया और उसके भीतर से निकलती और प्रवेश करती हुई प्रखर ज्योति शिखा उन्हें दिखाई दी। उन्होंने उसे भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और वह ज्योति अनन्त में लीन हो गई। दूसरे दिन उनमें लोगों को नई प्रगल्भता, बुद्धिप्राखर्य और वैलक्षण्य के दर्शन हुए। फलस्वरूप ग्रंथावलोकन मात्र से उन्हें सब विद्या प्राप्त हो गई।

मद्य-मांस नहीं : दूध और गुड़हल

उ०प्र० के जनपद फतेहपुर, असोथर कस्बा में 1750 में भगवंतराय खीची नामक एक राजा था। वह बड़ा गुणग्राही था। सुखदेव जी का वह शिष्य ही नहीं वरन सेवक बन गया था। सुखदेव जी तारा के उपासक थे, शाक्त थे। यंत्र द्वारा वे उसकी विधिपूर्वक मद्य-मांस युक्त पूजा-अर्चना करते थे। राजा को यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि ऐसे विद्वान, ऐसे पंडित पूजन सामग्री में मद्य-मांस का प्रयोग करते हैं। एक दिन उन्हें खबर दी गई कि मिश्र जी विधि-पूर्वक पूजा करने जा रहे हैं। वह ऐसे कुसमय में वहाँ उपस्थित हो गये। इस समय पूजन की सामग्री के बीच एक पात्र में मद्य और पत्तल में मांस भी ढका हुआ रखा था। सुखदेव जी पूजन निमग्न थे। इधर-उधर की बातों के बाद भगवंत राय ने वहाँ पर रखे सब पदार्थों का नाम पूछना शुरू किया। यथाक्रम ढके हुए पात्र और पत्तल की बारी आई। तब मिश्र जी के नेत्र अरुणाभ हो उठे। उन्होंने तत्काल कहा कि पात्र में दूध और पत्तल में गुड़हल के फूल हैं। उन्होंने सेवक को खोलने का हुक्म दिया पर उसे पता था कि वे पदार्थ नहीं हैं, इसलिए उसने नहीं खोला। तत्काल सुखदेव जी ने दोनों के ढक्कन खुद खोल दिये और उनके कहने के मुताबिक उनमें दूध और गुड़हल के फूल निकले।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

एक नहीं बीस साही

यह घटना डौंड़िया खेड़ा जिला उन्नाव के रावमर्दन सिंह के काल की है। सुखदेव जी बक्सर में एक कुटी में रहते थे। उनके अनेक शिष्य हुए जिनमें रावमर्दन सिंह भी थे। उनकी कुटी में साही नाम की एक युवा स्त्री रहती थी और सेवा-परिचर्या करती थी। लोगों ने इसका दुर्लौकिक फैलाना आरम्भ किया। सखेद सब बातें प्रत्यक्ष देखने के लिए वे स्वयं कुटी में आये। अंतर्ज्ञान से उन्हें आने का कारण पता चल गया। कुटी के प्रांगण में जब राव साहब आये तब उन्होंने कहा—"साही, राव साहब के लिए आसन ले आओ"। यह कहते ही वह सुस्वरूपा स्त्री कुटी के भीतर से आसन लेकर आई, यथास्थान उसे बिछाया और राव के सामने ही दूसरी ओर बाहर चली गई। आसन पर राव को बैठाकर उन्होंने साही को जल लाने की आज्ञा दी। पूर्ववत् फिर एक वैसी ही साही कुटी से जल लेकर निकली, राव साहब को दिया और बाहर चली गई। इसी प्रकार तीसरी साही पान, चौथी पुष्पमाला, पांचवीं मधु और बीसों साही तक उस कुटी के भीतर से निकलीं अपना-अपना काम कर बाहर चलीं गईं। राव साहब इसे देखकर हतप्रभ रह गये।

सुखदेव सिद्ध पुरुष थे। एक बार वह दौलतपुर (रायबरेली की पूर्व डलमऊ अब लालगंज तहसील) के निकट गंगातट पर जल के बिलकुल सन्निकट पूजा कर रहे थे कि इतने में एक महात्मा उनसे मिलने आये। उन्होंने सुखदेव जी के हाथ में एक गुटिका दी और बताया कि इसे मुख में रखने से अनेक अलौकिक काम करने की शक्ति आ जाती है। 'बस इतना ही गुण' सुखदेव ने कहा और अपने दोनों हाथों की अंजुली बनाकर चुपचाप गंगा के भीतर डाली और उसमें भरी हुई वैसी ही कोई बीस-पच्चीस गुटिकायें निकालीं। महात्मा इसे देखकर अवाक् रह गया।

तंत्र की भांति मंत्र-शक्ति की महिमा अपार है। गायत्री मंत्र सभी मंत्रों में श्रेष्ठ महामंत्र है। कानपुर महानगर से सत्ताइस कि०मी० पर स्थित खड़ेसर में गायत्री सिद्ध पीठ है जहां एक सुप्रसिद्ध गायत्री साधक श्री उपेन्द्र साधनारत हैं। अब तक वह छब्बीस गायत्री के महापुरश्चरण कर चुके हैं। उन्होंने गंगा के तट पर षटचक्र का भेदन भी किया है। वह गायत्री मंत्र शक्ति से भक्तों और आगन्तुकों की असम्भव समस्यायें हल करते हैं। वह अन्तर्ज्ञानी हैं और मंत्र-शक्ति के द्वारा किसी वस्तु को मंगाने, शिष्यों को कुछ भी देने की सामर्थ्य रखते हैं। अलौकिक घटनायें उनके पास निरन्तर घटित होना असाधारण नहीं है। मंत्र शक्ति से उनकी संकल्प शक्ति तथा प्रबल इच्छा शक्ति इस मात्रा और अनुपात में जागृत है कि विचार मात्र से उसकी पूर्ति होती है। यहाँ श्री उपेन्द्र से सम्बन्धित कुछ अलौकिक एवं आश्चर्यप्रद घटनायें वर्णित हैं।

ताँबे का लोटा : सोने का

भारतीय सन्तों द्वारा मंत्र शक्ति तथा इच्छाशक्ति के माध्यम से धातु परिवर्तन की रहस्यमयी बातें सुनने को मिलती रही हैं। वर्तमान काल में ऐसी घटनायें अविश्वासनीय लगती हैं पर प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार एक दिन प्रातः कुछ भक्त खड़ेसर मन्दिर परिसर में उपेन्द्र जी से इच्छा शक्ति से धातु परिवर्तन की बात-चीत कर रहे थे। उपेन्द्र जी ने कहा कि यह संभव है और एक तांबे के लोटे को कुछ देर तक धीरे से देखते रहे। शनैः-शनैः उसका रंग परिवर्तित होने लगा और अंत में देखते-देखते तांबा सोने में बदल गया। इसी प्रकार इच्छा शक्ति के माध्यम से श्री उपेन्द्र ने एक बार लोहे की कुदाल को सोने में बदल दिया। बाद में सोनारों ने लोटे और कुदाल के सोने को वास्तविक सोने के रूप की पहचान की।

एक व्यक्ति अनेक स्थल

श्री आर० सी० तिवारी सिविल जज कानपुर तब सेना में स्टोर कीपर थे। उन्होने एल० एलबी० कर लिया और मुंसिफी का फार्म भर दिया। उनका साक्षात्कार किसी 17 तारीख को इलाहाबाद में था। तीन दिन पहले वह इलाहाबाद गये। साक्षत्कार के दिन उपेन्द्र जी जो स्वयं डिफेंस में थे, कार्यालय नहीं गये और कमरा बन्द कर साधना में बैठ गये। वह उसी दिन 10 बजे दिन में सशरीर इलाहाबाद पहुंचे और 45-50 मिनट तक श्री तिवारी का उत्साहवर्द्धन करते रहे तथा सांत्वना दिया फिर थोड़ा दूध पीने के बहाने वहां से चल दिये। साढ़े बारह बजे उसी दिन वह अपने पुत्र पप्पू को खोजने श्री तिवारी के कानपुर आवास पर गये और उनके पिताजी से समय पूछा। लौटने पर श्री आर० सी० तिवारी ने जब पिता श्री को बताया कि उपेन्द्र जी उन्हें छोड़कर इलाहाबाद में कहीं निकल गये, कानपुर लौटे कि नहीं तो उन्होंने बताया कि वह तो साढ़े बारह बजे मेरे घर पर थे और पप्पू को खोज रहे थे और इलाहाबाद जाने या वहाँ से लौटने की बात गलत कही। तब तक उपेन्द्र जी वहाँ पहुंच गये। सब सुनकर वह हँस उठे और कहने लगे कि भाई तुम दोनों ही सही हो—वास्तव में गलत तो मैं ही हूं। इसी प्रकार कानपुर के अस्पताल में भइया जी के चाचा कैन्सर ग्रस्त पड़े थे। उनके बचने का कोई उपाय न था। उपेन्द्र जी आश्रम में सबसे ऊपर वाले मन्दिर को बन्द कर 10 बजे रात बैठ गये। श्री रघुवंशी आदि मौजूद थे। रात्रि 11 बजे श्री उपेन्द्र जी सशरीर अस्पताल पहुंचे और मरीज को एक सेब देते हुए कहा, 'चाचा, उठो लो प्रसाद।' उन्हें अस्पताल तक विदा करने लोग आये, फिर उन्होंने कहा 'वापस जाओ—पलटकर न देखो।' क्षण बाद किसी ने उपेन्द्र जी को वहाँ नहीं देखा। दूसरे दिन खण्डेलवान प्रातः पता लगाने आश्रम आये तो सबने कहा कि स्वामी जी तो रात पूजा पर थे।

14 जून की आग

उद्योगपति लोहिया जी की बम्बई एवं हैदराबाद में अनेक मिलें हैं। हैदराबाद में कई वर्षों से ठीक 14 जून को मिलों में अपने आप आग लग जाती थी और कारण समझ के बाहर था। उन्होंने कई तांत्रिकों की सहायता ली पर जो भी हाथ डालता वह काल कवलित हो जाता।

(शेष पृष्ठ 26 पर)

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

बिना बात

उषा सक्सेना

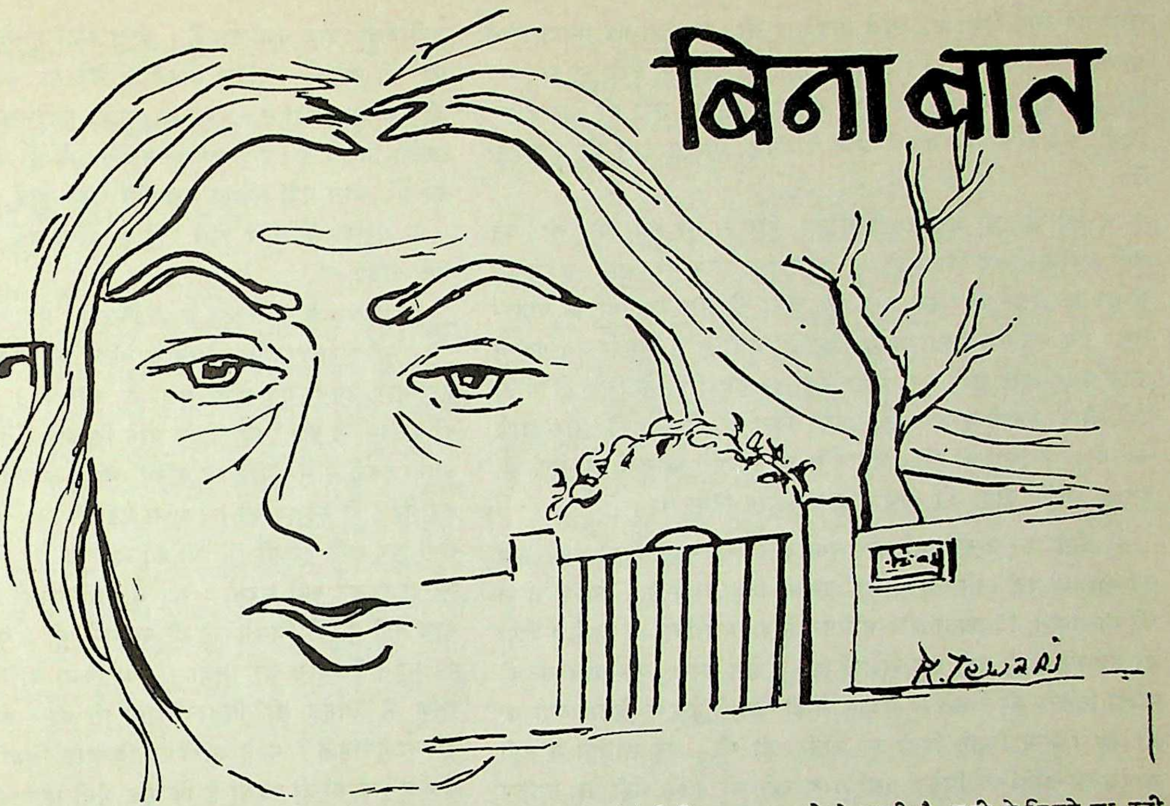

मिसेज वर्मा बहुत बेचैन थीं। कभी घड़ी देखतीं, कभी कमरे में जातीं, कभी बरामदे में, कभी लान में टहलतीं और कभी गेट खोल कर बाहर खड़ी हो जातीं। दीपा अभी तक कालिज से नहीं लौटी थी। रोज तो एक बजे तक आ जाती थी, आज चार बज गया था और अभी तक उसका कोई पता नहीं था। वह दो बार कालिज टेलीफोन कर चुकी थीं, चपरासी ने बताया था कालिज तो बंद हो चुका है, यहाँ कोई भी लड़की नहीं है।

उन्हें घबराहट होने लगी थी। दीपा बगैर बताये, अपनी दोस्तों के यहाँ भी नहीं जाती थी। "वह किससे अपने मन की बात कहे।" कालोनी में यदि किसी से जिक्र भी किया तो बात का बतंगड़ बन जायेगा। यों भी सामने के मकानों की खिड़कियों के एकाध चेहरे उन्हें अपनी ओर झांकते दिखाई दे रहे थे और जब वे उधर देखतीं तो आड़ में हो जाते। इधर कई दिनों से अखबारों में अजीब-अजीब सी खबरें पढ़ती रही थीं इसलिए भी मन न जाने कैसा हो रहा था। लाख रोकने पर भी उनकी आंखे रह-रह कर छलक उठती थीं।

वे चिन्ता में खड़ी थीं। सहसा ही सामने से मिसेज बनर्जी जाती दिखाई दी।

हैलो ! मिसेज वर्मा कैसे खड़ी हैं ?

ऐसे ही, कोई आने वाला है, उसी का इन्तजार कर रही हूं।

कुछ परेशान सी लग रही हो ?

नहीं तो ! आप क्या इधर किसी से मिलने आई थीं ?

जी हाँ ! मेरी एक क्लास फेलो रहती है, उसी से मिलने जा रही हूँ। अच्छा, चलूँ नमस्कार ?

"नमस्कार," मिसेज वर्मा ने चैन की सांस ली। माथे पर छलक आयी पसीने की बूदों को पोंछा और घड़ी देखी। "ओह ! पांच बज गये"। कहाँ देखूँ ? क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता।

उनकी घबराहट अकारण नहीं थी। कल रात उन्होंने दीपा को किसी बात पर समझाना चाहा था लेकिन वह बहस ही करती चली गयी थी। इसी बात पर दो चार कड़वी बातें उन्होंने दीपा से कह दी थीं।

वह सोचने लगीं उन्होंने कोई गलत बात तो नहीं कहीं थी। दीपा अब बच्ची तो नहीं रह गई थी। सोलह साल की हो चली थी। लेकिन स्वभाव में वही अल्हड़पन था। सबसे खुलकर बात करना, रात देर तक कुत्ते के साथ कालोनी में टहलना, पड़ोस में देर तक बैठकर गप्प मारना-ये सब बातें अच्छी नहीं लगती थीं। कल शाम ही मिसेज भूटानी ने भी उनसे कहा था कि "दीपा अब बड़ी हो रही है थोड़ा सा नियंत्रण उस पर रखना चाहिये"। उन्होंने ठीक ही तो कहा था। दीपा लाडली जरूर है लेकिन लाड़ का मतलब यह नहीं कि वह बिगड़ जाये।

मिसेज वर्मा मन ही मन कुछ सोचती हुई अन्दर आयीं। ड्राइंग-रूम में आकर सोफे पर बैठ गई। कुछ पलों के उपरान्त ही टेलीफोन गोद में रखकर उसके डायल को घुमाकर दीपा की दोस्तों को फोन करने लगी। "किसी को कुछ नहीं मालूम"। टेलीफोन यथास्थान रख

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सोफे पर सिर टिका कर आंखे बन्द कर लीं। याद आ गई ग्यारह साल पुरानी एक ऐसी ही शाम। यहां बैठकर वह दीपा के डैडी का इन्तजार कर रही थीं और तभी टेलीफोन की घंटी टनटना उठी थी। सोच कर रिसीवर उठाया कि देर में आने के लिए मिस्टर वर्मा को उलाहना देंगी।

लेकिन तभी अचानक रिसीवर हाथ से छूट गया था और वह वहीं बेहोश होकर गिर पड़ी थीं और होश आने पर अपने उजड़े हुए संसार को देखा था। सब कुछ लुट चुका थी और जिन्दगी का वीरान सफर तय करने के लिए अबोध दीपा ही बची थी। तब से अब तक वे इतने साल अपने हृदय पर पत्थर रख कर वह दीपा के लिए ही जीती रही थीं। उनकी मुस्कराहटें, उनकी जिन्दगी और उनकी आकांक्षायें सब दीपा के लिए ही थीं। भीतर से वह कितनी खोखली हो चुकी हैं, इसका उन्होंने दीपा को आभास तक न होने दिया था।

दीपा को उन्होंने मां और बाप दोनों का प्यार दिया था। अब तक तो वह यही सोचती थीं कि उनका त्याग व्यर्थ नहीं गया। दीपा की शालीनता, विनम्रता और भोलेपन से वह प्रभावित हो जातीं। दीपा को इंसानों से ही नहीं पशु-पक्षियों तक से प्रेम था। एक बार उसकी प्यारी बिल्ली को किसी ने मजाक में ही चलती ट्रेन में बिठा दिया था तो वह न जाने कितने दिनों तक रोती रही थी। वह स्वभाव से बड़ी भावुक थी इसीलिए मिसेज वर्मा सोच रही थीं "कि कहीं वह रूठकर किसी दोस्त के यहां तो नहीं बैठी है और मुझे परेशान कर रही है।"

दीपा सदा से ऐसी नहीं थी। जब से उसके बाबा और दादी मां से रूठ कर उसके चाचा के पास चले गये थे तबसे वह उदास रहने लगी थी।

बात छोटी सी ही थी। दीपा ने जूनियर कैम्ब्रिज पास कर लिया था। बाबा चाहते थे कि उसे हिन्दी स्कूल में डाल दिया जाये जिससे वह जल्दी पढ़ जाये और मां चाहती थी कि वह कान्वेंट में ही पढ़े। मां उसे अपने अनुभवों से भविष्य के लिए सक्षम बनाना चाहती थी और बाबा उसे एक सुगृहिणी बनाने के सपने देख रहे थे। झगड़ा पुरातनता और आधुनिकता का था। घंटो बहस, डांट-फटकार, अनशन, रोना-पीटना न जाने क्यों दीपा को अच्छा नहीं लगा था। कभी मां को मनाती, कभी बाबा को लेकिन कोई झुकने को तैयार नहीं था। बस बाबा चले गये और दीपा को लगा कि वह बहुत अकेली हो गई है। बाबा ने उसके छोटे से मन को तोड़ दिया था जिसे मां ने असीमित प्यार से जोड़ना चाहा था लेकिन न जाने कहां से दरार पड़ गई थी बीच में—

मिसेज वर्मा ने जाने कितनी देर अतीत के पृष्ठ पलटती रहीं। अंधेरा कितना घिर आया है उन्हें नहीं मालूम। सहसा किसी ने लाइट जलाई। चौक कर पूछा "कौन दीपा" ?

"नहीं बीबी जी मैं शांता। धोबी कपड़े लाया है।"

"ऊं ! उससे कह दो रख दे और जाये, कल कपड़े दूंगी।" उन्होंने घड़ी देखी सात बज रहा है। दीपा कहां होगी ? आज उसने खाना भी नहीं खाया। टिफिन बाक्स भी मेज पर छोड़ गई है। वह उठीं और भारी कदमों से चलकर बाहर आ गयी—कालोनी के सारे लड़के टहलने निकले थे। उन्हें लगा सब दीपा की ही बात कर रहे हैं। नहीं, अब ऐसे काम नहीं चलेगा। उन्होंने अपने भाई को फोन किया।

"दादा मैं रश्मि बोल रही हूं, दीपा नहीं आई है। आप फौरन चले आइये।"

"दादा के इन्तजार में वे फिर गेट पर आकर खड़ी हो गईं।

और उधर दीपा स्टेशन के वेटिंग रूम के बाथरूम में बन्द होकर बार-बार अपना मुंह धोती चली जा रही थी। दिन भर रोती रही थी। किसी ने देख लिया तो न जाने कितनी बातें बनेंगी। मुंह धोकर अपनी स्कर्ट से मुंह पोंछकर वेटिंग रूम में आकर बैठ गई। मां से रूठ कर पैदल ही स्टेशन की तरफ आ गई थी यह सोचकर कि अब वह कभी घर नहीं लौटेगी। "मां को जब मुझ पर विश्वास ही नहीं तो जिन्दा रहकर क्या करना। यह भी नहीं सोचा कि दीपा कोई ऐसा काम नहीं करेगी जिससे मां की बदनामी हो। भूटानी आंटी की बात पर मां ने विश्वास कर लिया। क्या किया था मैंने ? यही नहीं कि रमेश से साइंस की किताब मांग ली थी। क्या किसी से किताब मांगना गुनाह है ? मां ने आंटी पर विश्वास किया और मुझ पर नहीं। ठीक है जब मां ही कहती है कि मुझ जैसी औलाद से वे बिना औलाद के ही भली ठीक हैं तो मैं अब इन्हें कभी मुंह नहीं दिखाऊंगी।"

दीपा ने मन ही मन कुछ निश्चय किया और स्टेशन के आगे चलती चली गई। पटरियों तक पहुंची ही थी कि ट्रेन देखकर चीख पड़ी "नहीं—नहीं मैं नहीं मरूंगी। मां रोयेगी।" मां—मां बचाओ !

दीपा भाग चली अपने घर की ओर लेकिन फिर ख्याल आया "इससे तो तुम मर ही जाती तो अच्छा होता" बार-बार मां के शब्द कानों में गूंजने लगे। बढ़ते कदम रुक गये। ठीक है मां, जैसी तुम्हारी इच्छा। मैंने तुम्हारी बात कभी टाली नहीं—तुम्हें जब मेरी जरूरत ही नहीं तो मैं जी कर क्या करूंगी।

दीपा के पैर कब गोमती की ओर मुड़ गये, कब वह वहां पहुंच गयी, उसे कुछ याद नहीं। पुल पर पहुंच कर वह कच्चे रास्ते से धोबियों के घाट की ओर उतरती चली गई। धीरे-धीरे भीड़ को छोड़ सुनसान जगह पर पहुंच गयी। बहुत रोकने पर भी जोर से रुलाई आ गई। मां, दीपा को माफ कर देना। दीपा धीरे-धीरे पानी के पास पहुंच गई लेकिन बहुत जोर से डर गई "बाबा रे ! कितना काला पानी।" लगा पानी नहीं कोई भूत है जो उसे जबरदस्ती अपनी ओर घसीट रहा है। जोर से चीख पड़ी "उइ मां ! बचाओ-बचाओ।" बदहवास सी भागने लगी उस ओर जहां धोबी लोग कपड़े धो रहे थे और गिर पड़ी। कितनी देर वह डर के मारे बेहोश रही, उसे कुछ नहीं मालूम। जब आंख खोली तो उसका सिर एक धोबिन की गोद में था। घबराकर उठ बैठी।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

"क्या बात है बिटिया ?" उसने बड़े प्यार से पूछा। क्या रास्ता भूल गई हो ?

दीपा खामोश थी लेकिन हिचकियाँ रुकने का नाम नहीं ले रही थीं।

बिटिया क्यों रो रही हो ?

क्या फेल हो गयी हो ?

दीपा ने सिर हिला कर कहा। "नहीं।"

फिर क्या बात है। क्या किसी से झगड़ा हुआ है ? अपरिचिता ने सही बात पकड़ ली थी। दीपा फूट-फूट कर रो पड़ी और उस स्नेहिल अम्मा सी धोबिन को सारी बात बता दी। न जाने कितनी देर तक दीपा उसे कुछ बताती रही और वह चुपचाप सुनती रही। फिर प्यार से दीपा को थपथपा कर बोली "बिटिया, छोटी सी बात पर कोई मां से रूठता है। उन्होंने जो कुछ भी कहा तुम्हारे भले ही के लिए ही तो कहा। जरा सोचो तो बिटिया, तुम्हारे इतनी देर तक घर से गायब रहने पर लोग कितना कीचड़ उछाल रहे होंगे तुम्हारी मां पर।" धोबिन न जाने कितनी देर उसे न जाने क्या-क्या समझाती रही और वह चुपचाप बैठी रही। उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। धीरे-धीरे उसके चारों ओर भीड़ इकट्ठी होती जा रही थी।

इधर भीड़ से दीपा की मां भी घिर गई थी कालोनी में। उसके घर न लौटने की खबर आग की तरह फैल गई थी। कुछ लोग मिसेज वर्मा को सांत्वना दे रहे थे और उनकी विवशता का मजाक उड़ा रहे थे। जितने लोग उतनी तरह की बातें—

"अरे साहब ! पुलिस में रिपोर्ट लिखाइये।"

"भई कमाल है आजकल की तालीम का।"

"देखने में कितनी भली लगती थी।"

"किसी के साथ तो नहीं चली गई। आजकल की ये लड़कियाँ तो बड़ी ही हिम्मतवर होती हैं।"

"मां ने आजादी भी बहुत दे रखी थी।"

"जरा देखिये तो मिसेज वर्मा आपके जेवर तो नहीं ले गयी।"

"नहीं-नहीं", मिसेज वर्मा जोर से चीख पड़ीं। "मेरी दीपा ऐसा नहीं है। भगवान के लिए आप लोग ऐसी बातें न कीजिये।" उनका धैर्य टूट गया और वे बिखख कर रो पड़ीं।

"रश्मि, पुलिस में रिपोर्ट लिखा दो अब देर करना ठीक नहीं।" उनके भाई ने सलाह दी।

"जैसा आप ठीक समझें।"

सहसा ही उन्हें लगा कि कोई मकान के पीछे के दरवाजे की साँकल खटखटा रहा है। वहाँ से तो कोई नहीं आता। "मुझे धोखा हुआ होगा।" लेकिन लगा जैसे खटखटाने की आवाज तेज होती जा रही है।

बेमन से उठीं, रुआँसी आवाज में जाकर पूछा-कौन है ?

"दरवाजा खोलो माँ।" एक डरी हुई सी आवाज कोने से आई।

"दीपा मेरी बेटी" मिसेज वर्मा ने बिजली की सी गति से दरवाजा खोला और दीपा आंधी की तरह आकर उनसे लिपट कर फूट-फूट कर रो पड़ी।

लोगों के चेहरे पर कुछ देर पहले तैरने वाले सारे सवालिया निशान अब जैसे पूर्ण विराम बन गये हों।

●

लघु कथा

लोभ का फल

—गोपालदास नागर

दो चोर थे। एक बार किसी जंगल में उन्हें एक पहाड़ पर सोना दिख गया। सोना पत्थर के अन्दर दबा था। दोनों ने सोचा, इसे कैसे निकालें ? फिर यह सोना असली है या सोने की तरह की कोई दूसरी धातु है ? सोने की परख तो उन्हें थी नहीं। व्यर्थ मेहनत न करनी पड़े, इसलिए दोनों ने विचार किया कि किसी सुनार को इसमें से आधा हिस्सा देने की शर्त पर बुला लाया जाए, जो इसमें से सोना निकाल कर हमें दे दे।

वह दोनों सुनार के पास गये। सुनार भी कम लोभी नहीं था। वह साथ चलने को तैयार हो गया। उसने अपनी पत्नी से सलाह ली। पत्नी ने कहा, "ऐसा करो, मैं आपको जहर वाले लड्डू बना कर देती हूँ। सोना असली हो तो यह प्रसाद चोरों को खिला दीजिएगा। बस, फिर सारा सोना अपना !"

सुनार को यह सलाह पसंद आयी। लड्डू झोले में रखे। छेनी-हथौड़ा लेकर वह चोरों के साथ जंगल में पहुँचा। पहाड़ में से सारा सोना निकाल लिया। शुद्ध सोना था। लगभग दस किलो। इतना सोना देखकर चोरों की नीयत खराब हो गयी। उन्होंने सोचा कि इस सुनार को यहीं मार कर फेंक दिया जाए तो आधा सोना इसे नहीं देना पड़ेगा। और चोरों ने उस सुनार की हत्या कर दी।

अब उन दोनों चोरों की खुशी का ठिकाना नहीं था। उन्होंने अपनी बुद्धि की प्रशंसा की। फिर उन लोगों ने सुनार का झोला देखते हुए सोचा-इस झोले में क्या है ?

दोनों ने देखा—झोले में लड्डू थे। चोरों को आज का दिन भाग्यशाली लगा। भूख तो लगी ही थी, इसलिए पेट भरकर लड्डू खाए। जहरीले लड्डुओं ने असर करना शुरू कर दिया। दोनों चोरों पर बेहोशी छाने लगी और सुनार के साथ वे भी हमेशा के लिए सो गये।

सोना अब भी वहीं चमकता हुआ पड़ा रहा। ●

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

तीन कविताएँ

(1)

चहकने लगी हैं दिशायें।
थिरकने लगे हैं घटाओं के पाँव,
आँख के सरोवर में।
पेड़ बहुत गहरे तक/भिगो देता है उन्हें
जब वे रचते हैं कोई मंत्र,
किन्हीं प्रार्थना क्षणों में।

(2)

हरापन दौड़ रहा है
जंगल-जंगल
नदी बजती है, जल तरंग सी।
शाम के हाथों में
शिराओं में,
धमनियों में,
रक्त कोशिकाओं में।
मांस पेशियों में।
आकार ले रहा है पेड़।
किसी महोत्सव के सूत्रधार सा
पहाड़ की चोटी पर खड़ा।
रितुओं का समूह गान सुनता हुआ।

(3)

इसके पूर्व कि उमड़ता हुआ तूफान
नोच डाले
दिप-दिपाते बनांत का चेहरा
और किसी बुढ़िया के दांत सा
पेड़ के अस्तित्व को उखाड़ फंके,
मुझे जमीन के अन्दर
गहरे तक धस जाना चाहिये
और फैली हुई जड़ों से गुथकर
तने के जरिये/लगातार भेजना चाहिये,
मिट्टी/पानी/और खनिज लवण।
ताकि अनेक उर्जा कुण्ड में बदल सके पेड़
और सँभाल सके मोर्चा
उठती हुई आंधियों के खिलाफ
मुस्तैदी से धकेल सके उन्हें
अघोषित वार दांतों के कुहासे में।

—कैलाश पचौरी

रूप धोकर नेह से

न भूलूँगी तुम्हारे नेह के नैपथ्य का सर्जन
जिसने झोपड़ी के दीप को, सूरज बनाया है।
जहाँ अभिशाप्त साधों का घना अवसाद रोता था,
बिलखते उस अबूझे दैन्य की कारागृही थी मैं।
जहाँ आठों पहर नैराश्य का ताण्डव बिलम्बित था,
अवर्णित क्षोभ के उस व्यूह में सहमी कहीं थी मैं।
मेरा रूप धोकर नेह से सुख का दिया दर्पण,
धरा की धूल को तुमने गगन की वधु बनाया है।

उजली ज्योति किरणों से हटा जन्मान्तरों का तम,
तुम्हारे रूप की आभा हुई अभिव्यक्त छन्दों में।
अनूठी—चाहना की अंगुलियों में बनी आकृतियाँ,
स्थिति प्रज्ञ हैं संकल्प अब, निःशेष द्वन्दों में।
हर क्षण दृष्टि को दे सृष्टि से अनमोल आकर्षण,
नूतन भूमि को आकाश से तुमने सजाया है।

परिष्कृत हो गया है बोध, अब अनुभूत सत्यों से,
नए परिवेश से अस्तित्व को सद ज्ञान मिलता है।
नहीं हैं बांझ कोई स्वर, उधर से शब्द झरते हैं,
तुम्हारे स्मरण से मीत, अब सम्मान मिलता है।
हुआ अभिभूत यह जीवन जगा है प्यास में चंदन,
प्रियतम फिर नया यह जन्म फागुन में नहाया है।

निछावर है तुम्हें सर्वस्व मेरा चिर-अचर कविते,
तुम्हारी कृति हूं जब चाहना इसको गिरा देना।
अभी तो साधना को साध्य के दर्शन मिलें हैं प्रिय !
अभी न मंच पर कोई यवनिका को गिरा देना।
क्षण भर के लिए भी अब न रोको प्राण आलिंगन,
विगत की विकल यादों ने बहुत दिन तक रुलाया है।

—विद्या 'रश्मि'

सूखे परिणाम

तुझको पाकर ओ बन्धु।
और क्या पाया मैंने ?
बाहर को खुलते द्वारे,
और ऊबे हुए प्रणाम।
कोमल, प्रिय आरम्भों को
बेहद सूखे परिणाम।
धुंधुआते—से आकाश,
और दो टूटे डैने।

मुरझाए फूल छुअन के,
टूटी बेलें बातों की।
कुछ दिन जलते लावे—से,
ज्वालामुखियां रातों की।
यादों की तेज कटारें,
और क्षण कुछ बेहद पैने।
तुमको पाकर ओ बन्धु,
यही सब पाया मैंने।

डॉ० प्रभाकर ओझा

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

विश्व माया-सी

(1)

सागर का ठीठ सुत भर-भर घटक्षीर के,
अविरल उडेंलता, नहा रही वसुन्धरा ।
धुल रहे धवल अंग, निखर उठा उज्वल तन,
देख रूप शरमा रहीं शत-शत अप्सरा ।
करती ठिठोली उछलती उर्मियों के मिस,
मिलने को आतुर सी तुंग-पयोधरा
डाल जयमाल रश्मियों का शरद्‌चंद्र पर,
कर रही वरण आज वसुधा स्वयंबरा ।

(2)

गुदगुदा रहा प्रगल्भ चन्द्र मृदु करों से,
निशि खिलखिला हँसती आज कैसी निरूपाया सी
लज्जिता तारापंक्ति ढंक वस्त्र अंबर में,
देख रही शशि-विलास किसी खंडिता असहाया सी ।
कुंतल समेटे औ' लिपटी करपाशों में,
निशा सुन्दरी बनी प्रियतम की छाया सी ।
रोम-रोम पुलकित हैं, झर रहा अमृत-रस,
आर्द्रतल सारा और कांप रही काया सी ।

(3)

किन्तु तुम दूर आज इतनी दूर मेरी प्राण,
मुझको हँसाती औ' रुलाती विश्वमाया सी ।
डूबे हैं विलास में भू-अंबर दिगन्त, सी, सब
किन्तु तुम छिपी किसी शंकिता परजाया सी
कैसी शरद पूनो जब मेरा तिरोहित चांद,
अब भी न निकला हुयी रात्रि गतप्राया सी ।
नयनों में छाया यह शशि मिस तुम्हारा रूप,
मन में घिर आयी पर शशांक की मलिन छाया सी ।

—प्रयागदत्त चतुर्वेदी

दहेज

चाँद की रोशनी में,
गर्म होती हुई
वह उम्र
जब सिसकती है
तो,
संम्पूर्ण सृष्टि
बिलखने लगती है ।
जब मेघ के
गर्जन से
काँपती है,
कोयल की गीतपर
रोती है
किसी झरोखे से
बिजली का कड़कना
निहारती है
तब
ब्रह्मा को ताने मारती है
उस समय
मानवता की सारी
जिन्दगी
मृत्यु की गोद में
चैन से सोये रहती ।

—शम्भूप्रसाद राही

टेम्स के किनारे

बदलियों से झिरझिराती शाम
टेम्स के किनारे
मटमैल रही है
भारतीय स्वतंत्रता के
समूचे इतिहास को,
शायद मेरा मन भी मलिन हो गया है ।
सामने खड़ी पार्लियामेंट की बिल्डिंग
क्रोध—प्रतिशोध के
अन्तर्द्वन्द्वों को भड़का रही है मेरे भीतर,
मैं देख रहा हूँ टेम्स के पानी में
बहता रक्त ऊधमसिंह महान का,
रक्तिम आंतें भगत सिंह की
और प्रतिबिम्ब
बापू, नेहरू, सुभाष
और कितने स्वतंत्रता सेनानियों का ।
मौन तटस्थ टैम्स की लहरें
मुझे पुकारती हैं
लेकिन मैं खो गया हूँ विगत में
और बस इतना ही कह पाता हूँ—
टैम्स, यहां के कवियों की
तू बेतरणी हो सकती है
पर मेरी गंगा नहीं बन सकती ।

—डॉ० श्याम सिंह 'शशि'

न आये मीत सावन के

गगन में गुंजते सस्वर सलोने गीत सावन के ।
जलद की भींगती पलकें,
छलकती नयन से धारा ।
पवन की सिसकती सिहरन ।
लिये घनघोर अंधियारा ।
विरह की पीर कि कसकन न आये मीत सावन के ।
टपकना मोतियों का यह ।
फिसलना सरस गीतों का ।
लचकना डालियों का शोख ।
पाकर प्यार गीतों का ।
मगन मन झूमती गलियाँ लिए संगीत सावन के ।
भ्रमर का वल्लरी चुम्बन,
कली का मौन मुस्काना ।
मयूरी के चरण चंचल ।
नया उल्लास भर आना ।
हृदय के भाव उद्वेलित विरह दृग प्रीत सावन के ।

—राजेन्द्र परदेसी

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पृष्ठ (17 का शेष)

जोग जग जानकी विराग को पुनीत पीठ,
रामीन में सोठि दीठि बाहरी निहारि है ।।
'आयुस' आदेत 'बाबा' भवो - भलो भाव सिद्ध,
'तुलसी' विचारि जोगी कहत पुकारि है ।
राम भगवन को तो कामतरु ते अधिक,
सिय वट सेए करवल फल चारि है ।।

गोसाईं जी ने इस क्षेत्र की जो भौगोलिक सीमा दी बिलकुल स्पष्ट है—वारिपुर दिघपुर बीच बिनसति भूमि अंकित जो जानकी जल जाति की ?

लाला भगवान दीन का मत है कि "महर्षि वाल्मीकि का वह मूल आश्रम जहाँ उन्हें दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ, जहाँ उन्होंने विश्व के प्रथम काव्य रामायण कीं रचना की, जहाँ जानकी आयीं और जहाँ लव-कुश कुमारों का जन्म हुआ; अवध विरहुत रेलवे (वर्तमान पूर्वोत्तर रेलवे छोटी लाइन) भीटी स्टेशन से चार मील दक्षिण में गंगातट पर है। इसे सीतामढ़ी के नाम से जाना जाता है।"

गोस्वामी तुलसीदास के इस आश्रम में आने तथा उनके द्वारा उसकी भौगोलिक स्थिति को स्पष्ट कर देने से अब कहीं से भी सन्देह की गुंजाइश नहीं कि यह वही सीतामढ़ी है जहाँ वाल्मीकि आश्रम था।

वाराणसी से 66 किलोमीटर पश्चिम एवं इलाहाबाद से 71 किलो मीटर पूरब ग्रैंड ट्रंक रोड पर जंगीगंज बाजार है। यहाँ से कोनिया जाने के लिए पक्की सड़क है—जंगीगंज धनतुलसी मार्ग इसी मार्ग पर 12.4 किलोमीटर की दूरी पर 'बनिया का तारा' नाम की जगह है। यहाँ से दो किलोमीटर दक्षिण गंगा तट पर यह वाल्मीकि आश्रम है। इसी स्थान को सीतामढ़ी कहते हैं क्योंकि जानकी ने अपने दूसरे वनवास की घड़ियाँ यही बितायी थीं और यहीं लव-कुश जन्मे और यहीं वैदेही धरती में समायीं।

दुर्भाग्य से यह ऐतिहासिक और पावन स्थान बहुत दिनों तक उपेक्षित रहा है। अब इस स्थान के विकास और उत्थान के लिए एक महर्षि वाल्मीकि आश्रम व्यवस्था समिति बनी है और विकास का काम किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत महर्षि वाल्मीकि, जानकी, लव-कुश कुमारों की मान्यताओं के अनुरूप दिव्य प्रतिमाओं से युक्त एक विशाल मन्दिर स्थापित किया जायेगा। इसके अतिरिक्त शोध संस्थान, विद्यापीठ आदि की स्थापना भी की जायगी। ●

(पृष्ठ 18 का शेष)

पर्यवेक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'मानस' की सती संशय-विह्वला इड़ा हैं और पार्वती विश्वास परिवेष्ठिता श्रद्धा हैं।

कालिदास ने जो बीज डाला तुलसी ने उसे अंकुरित किया और कालान्तर में जयशंकर प्रसाद ने उसे पल्लवित और पुष्पित किया। इड़ा और श्रद्धा के परस्पर प्रतिकूल प्रवाहों की पृष्ठभूमि पर 'कामायनी' की रमणीय वनस्थली को जीवन-प्रवाह मिला तथा श्रद्धा की मंगल-मयी छाया में नारी के सुमधुर स्वरूप की सहज अन्विति हुयी—

नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पग तल में;
पीयूष स्रोत-सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में।

अणु और परमाणु के विस्फोटक पर खड़ा आज का बुद्धिवादी वैज्ञानिक हृदयस्थ श्रद्धा अथवा कोमल भावों को झुठलाता हुआ विनाश की ओर निरन्तर अपने चरण बढ़ा रहा है। निकट भविष्य में वह अपनी ही ज्वाला में उसी प्रकार भस्म हो जायेगा जैसे सती भस्म हुयी थी; उसी प्रकार उसका जीवन विश्रृंङ्खल होगा जैसे श्रद्धा विहीन मनु का हुआ था; वह उसी प्रकार अविश्वास के हुतासन में झुलस जायेगा जैसे सती झुलसी थी। मानवता की पूर्ण स्थिति को प्राप्त करने के लिए 'मानस' की अतल गहराई में प्रवेश करने की अपेक्षा है। ज्ञान से भक्ति का, श्रद्धा का इड़ा से समन्वय ही 'तुलसी' और 'प्रसाद' का सन्देश है। यही समन्वय-साधना तथा रूपक-योजना मानस का सुन्दर रहस्य है। निःसन्देह बुद्धि और हृदय के मध्य सामंजस्य स्थापित हो जाने पर जीवन के निखिल झंझावात समाप्त हो जाते हैं। ●

(पृष्ठ 20 का शेष)

तांत्रिकों ने इस काम के लिए लाखों रुपये बर्बाद कर दिये थे। लोहिया परिवार के एक सम्मानीय सदस्य ने उपेन्द्र जी से सम्पर्क किया। उन्होंने स्थान देखने के लिए बल दिया पर उपेन्द्र जी ने मंत्र शक्ति से बिना स्थल निरीक्षण किये कुछ प्रयोग बिना अर्थ लाभ के किये जो सफल रहे। वास्तव में उस वर्ष से फिर 14 जून को दोनों जगह आग नहीं लगी। दो-तीन दिन बाद फिर स्वामी जी से सम्पर्क किया गया और आश्रम व्यवस्था के लिए लालच दिखाया गया पर उपेन्द्र जी ने बहुत साफ कहा, 'जो कहना या करना था कर दिया। आध्यात्मिक व्यवस्था और मंत्र शक्ति पैसे से नहीं खरीदी जा सकती है।

आध्यात्मिक दुनिया, अदृश्य सत्ता, प्रत्यक्ष संसार से बिल्कुल भिन्न है। हमें जो नहीं दिखता या जो नहीं समझ में आता है वह सब भी घटित हो रहा है। हमें जो आश्चर्यजनक, रहस्यमय, अलौकिक प्रतीत होता है, वह सन्त-संसार के लिए कुछ भी असंभव नहीं है। आश्रम में वसन्त पंचमी, नवरात्रि के अवसरों पर विशेष मंत्र साधना की जाती है और गायत्री मंत्र से यज्ञादि कार्यक्रम होते हैं। इस अवसर पर नारियल, सोहन हलुआ का प्रसाद, फूलमाला, लौंग की वर्षा, जलती हुई थाली, गंगाजल, सिक्कों का प्रगटीकरण अब दर्शकों व भक्तों के लिए साधारण घटना सी लगती है पर अविश्वासी साधारण दोष खोजी मन क्यों और कैसे के प्रश्न चिह्नों से घिरे रहते हैं और एक महासत्य को सहज स्वीकारते नहीं हैं।

●

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

साहित्य के जीवन्त आदर्श आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

—श्रीमती नीला पाण्डेय

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी हिन्दी के युग प्रधान साहित्यकार और चिंतक थे। वे साहित्य-नगरी के ऐसे विशाल वटवृक्ष थे, जिसके कोटर में अजगर निवास करता है, शाखाओं पर असंख्य पक्षी अपना घोंसला बनाते हैं तथा उसकी सुखद छाया में लू-धूप से परेशान ग्रामवासी एवं थके-हारे पथिक आराम कर, नवीन प्राण-शक्ति ग्रहण करते हैं। जिस प्रकार वह वृक्ष-नगर का परिचय होता है वैसे ही आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी भी साहित्य-नगरी के परिचय हैं। आपका यह पृथ्वी-संबन्ध आकस्मिक या यत्नन नहीं था, सहज और स्वाभाविक था। यह उनके साहित्य जीवन का प्राण था, उनकी आत्मा थी। ज्ञान की गहनता और सादगी तथा सरलता की ऐसी मोहक छाप विरले साहित्यकारों में होती है।

'साहित्य जीवन की सर्वश्रेष्ठ एवं सम्पूर्ण अभिव्यक्ति है।' द्विवेदी जी इस कसौटी पर कसे, सच्चे साहित्य के जीवन्त आदर्श थे। आपकी रचनाएँ जीवन के विभिन्न पक्षों की श्रेष्ठ, कलात्मक एवं सहज अभिव्यक्तियां हैं आपको ज्योतिष और गणित जैसे शुष्क विषय को उपन्यास का कलेवर, आलोचना को साहित्य की शास्त्रीय प्रतिवद्धता के साथ सरसता, साहित्येतिहास को अनुसंधित्सु नव आलोक, धर्म-कला-संस्कृति को प्रेरक एवं अन्वेषी अभिव्यक्ति, निबंध को नयापन और लालित्य, अनुवाद को प्राणधर्मिता एवं अनुरंजक वृत्ति तथा सम्पादक को स्वतंत्र शोधपरक, निर्भीक एवं न्याय-दृष्टि प्रदान थी। इस विशाल कलेवर के वृषभ-कंधों में उत्तरदायित्व निर्वाह की अप्रितम क्षमता थी। विशाल भुजाओं में सभी को समेट लेने की शुभ शक्ति थी तथा हिमालय स्वरूप हृदय से निरन्तर झरता हुआ साहित्य निर्झर था, जिसकी शतधा गतिशीलता सदैव सागरोन्मुखी थी।

साहित्य का लक्ष्य मनुष्य भी है और कला भी। उनकी दृष्टि में कला या साहित्य के उत्कर्ष के जो शास्त्रीय अभिमत हैं, वे अनपेक्षित रूप से उपेक्षित होते हैं। आचार्य द्विवेदी जी मनुष्य को साहित्य का लक्ष्य बनाकर मानव की लौकिक समष्टि को प्रमुखता दी है, तो उसके शास्त्रीय सिद्धान्तों की भी सार्थकता बतायी है आपने साहित्य के अलौकिक पक्ष एवं कला पक्ष को गौण बनाकर मानवतावादी भूमिका पर साहित्य का आदर्श प्रतिष्ठित किया है। द्विवेदी जी का मानवतावाद यथार्थोन्मुख मानवतावाद है, जो इतिहास और विज्ञान से मुंह मोड़कर चलने वाला नहीं है। आचार्य द्विवेदी जी की मान्यता है कि किसी भी कवि अथवा साहित्यकार की कृति उसके व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित

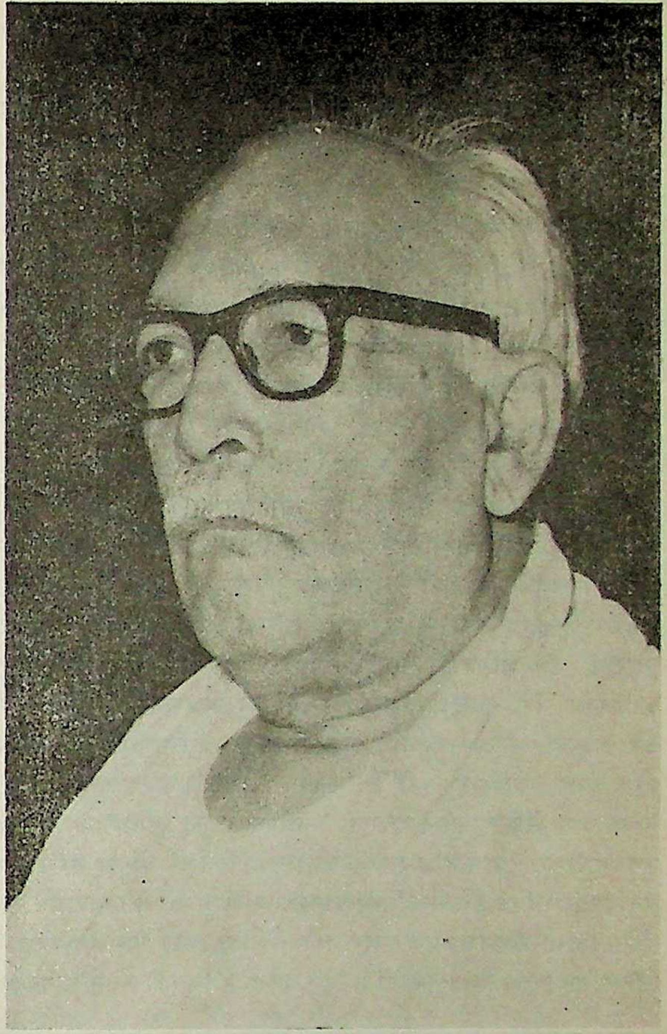

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

करती है तथा उसके व्यक्तित्व का निर्माण देश-काल से प्रभावित होता है। परिणामतः किसी भी रचना का मूल्यांकन रचनाकर्मी के देश-काल एवं परिवेश की जानकारी के बगैर सत्य नहीं हो सकता। उन्होंने इसी विचार को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'कालिदास उसी समय में उसी परिस्थिति में और उसी जाति में हो सकते थे जिसमें हुए थे।'

आचार्य द्विवेदी जी साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने के पक्षपाती हैं। उनका मत है कि 'जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गतिहीनता और परमुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोद्दीप्त न बना सकें, जो उसके हृदय को परदुःखकातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।' द्विवेदी जी की यह विशिष्ट दृष्टि युग-सम्मत है, युग की मांग के अनुरूप है। जो साहित्य स्वयं के लिए लिखा जाता है वह मूल्यवान नहीं है लेकिन वही साहित्य अक्षय निधि है जो मनुष्य-समाज को रुग्ण, शोक दारिद्रय, अज्ञान तथा परमुखापेक्षिता

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

से बचाकर उसमें आत्मबल का संचार करता है। साहित्यकार को स्वयं महान होना चाहिए, क्षुद्रता और मानसिक संकीर्णता से ऊपर होना चाहिए। उसे सस्ती तथा हल्की लालसाओं को उत्तेजित करने वाले साहित्य की रचना नहीं करनी चाहिए। जब तक उसका उद्देश्य महान नहीं, वह मनुष्य को देवतुल्य बनाने का संकल्प लेकर नहीं चलेगा और तब तक वह महान, सफल, जीवन साहित्य का सर्जक नहीं हो सकता।

आचार्य द्विवेदी जी ने साहित्य में रचनाकार के व्यक्तित्व की जाँच-परख पर विशेष बल दिया है। साहित्यिक कृति के निर्माण में सर्वाधिक योगदान करने वाला तत्व है 'कृतिकार का व्यक्तित्व'। आचार्य द्विवेदी जी ने विश्वकवि रवीन्द्रनाथ से प्रभावित होकर जीवन, जगत् और साहित्य के सम्बंध में जिस दृष्टिकोण को प्राप्त किया, उसी के माध्यम से संत साहित्य को विशिष्ट मूल्यवत्ता प्रदान की और कबीर को प्राणवान कवि तथा क्राँतिकारी युग-पुरुष सिद्ध किया। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि उनसे पूर्व मनुष्य की महिमा और मानवीय मूल्यों में इतनी गहन आस्था किसी अन्य आलोचक ने आधुनिक संदर्भ में व्यक्त नहीं की। आपके विद्वतापूर्ण विचारात्मक लेखों यथा 'अशोक के फूल', तथा 'कुटज' सदृश प्रसिद्ध ललित निबंध', 'हिन्दी साहित्य, की भूमिका', 'हिन्दी साहित्य और 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' जैसा–साहित्येतिहास हो या 'नाथ सम्प्रदाय', 'मध्यकालीन धर्म साधना', 'सहज साधना', साहित्यसहचर' जैसे समीक्षा एवं शोध-परक ग्रन्थ', बाणभट्ट की आत्मकथा 'मेघदूत एक पुरानी कहानी' 'चारू चन्द्र लेख', 'पुनर्नवा' एवं 'अनामदास का पोथा' के समान कथा-साहित्य, 'प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद' हों या सम्पादित अनूदित नानाविध ग्रन्थ–कहीं भी आपका पाण्डित्य आपकी भावभूमि की तरलता तथा रोचकता पर सवार नहीं हो पाता। यह विलक्षण रचना-धर्मिता बहुत कम साहित्यकारों में मिल सकता है, जिसकी कलम मानवता के प्रत्येक पहलू को प्राँजलता से रूपायित कर युगप्रवर्तक साहित्य की सृष्टि कर सकें। उक्त सभी रचनाएं साहित्य-देवता आचार्य द्विवेदी जी की लेखनी का पवित्र प्रसाद हैं। यह साहित्य प्राचीन एवं अर्वाचीन को बांधने वाला सूत्र है। द्विवेदी जी की मान्यता थी कि "अच्छा और शाश्वत साहित्य सदैव रहेगा, मात्र कूड़ा कचरा बह जायेगा।"

साहित्य-मनीषी आचार्य द्विवेदी जी ने हिन्दी-साहित्य को चालीस से अधिक ग्रन्थों का जो विशाल भण्डार दिया है वह सदैव चर्चा का विषय रहेगा। आपके समस्त साहित्य में एक जीवन-दर्शन विद्यमान है। आपके साहित्य-दर्शन में मनुष्य के अतुलनीय सामर्थ्य पर अटल विश्वास है। नवनिर्माण की प्रक्रिया से पूरी होती हुई मानवता की महिमा से मण्डित है। आपने सम्पूर्ण हिन्दी-साहित्य को भारतीय जनता की एक मूल्यवान थाती के रूप में देखा। भूमिका में आपने कहा है–"कम-से-कम भारतवर्ष के आधे हिस्से की सहस्रवर्षव्यापी आशा–आकांक्षाओं का मूर्ति-मान प्रतीक यह हिन्दी-साहित्य स्वयं में एक ऐसी शक्तिशाली वस्तु है कि इसकी उपेक्षा भारतीय विचारधारा को समझने में घातक सिद्ध होगी।

आपके विराट व्यक्तित्व में आदिकवि की करुणा, तुलसी का समन्वयवाद, कालिदास का लालित्यबोध, कबीर का फक्कड़पन, बाणभट्ट का वर्णन चातुर्य, शुक्ल जी का पाण्डित्य, सन्तों की नम्रता और सहजता, रवीन्द्रनाथ की सौंदर्य चेतना, मालवीय जी की महनीयता, गांधी की उदारता तथा आइन्स्टाईन की वैज्ञानिकता एवं आधुनिक समाजवादी भावना का हमें मिश्रित रूप दर्शित होता है।

पाण्डित्य की सुदीर्घ परम्परा में आचार्य द्विवेदी जी का स्थान 'शलाका–पुरुष' का है। जो स्वयं सहज दीप्ति से कतार के बाहर स्वयं के प्रकाश से जगमगाता है। कबीर के व्याख्याता आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी सदैव अमर हैं। इस साहित्य-देवता को जनता का शत-शत प्रणाम।

●

प्रेरक प्रसंग

दूरगामी कौन

—केशवदेव मिश्र 'कमल'

वह बूढ़ा हो गया था। उसकी पत्नी मर चुकी थी। उसके तीन बेटे थे, तीनों की बहुओं में आपस में बनती नहीं थी; क्योंकि हर कोई गृह-स्वामिनी बनना चाहती थी।

उनकी कलह से तंग आकर बूढ़े किसान ने एक दिन अपने बेटों को बुलाकर कहा-"रोज-रोज तुम्हारी बीवियाँ झगड़े खड़े कर देती हैं। मैंने एक पहेली सोची है। जो उसे बूझ लेगी, वही घर की मालकिन होगी।" बेटों और उनकी बहुओं ने यह शर्त स्वीकार करली।

उस साँझ को बूढ़े ने तीनों बहुओं से कहा, "वह क्या चीज है, जो सबसे अधिक दूर तक जाती है? जिसका उत्तर सही होगा, वह इस घर की मालकिन बनेगी।"

अगले दिन सुबह-सुबह बूढ़े ने तीनों बेटों और तीनों बहुओं को बुलाया। बारी-बारी से उसने बहुओं से उत्तर पूछा। बड़ी बहू बोली, "मुर्गे की आवाज! जब वह बाँग लगाता है, तब सबसे दूर तक जाती है।"

मझली बहू ने कहा-"कुत्ते का भौंकना। जब वह रात को भौंकता है, तब उसकी आवाज मुर्गे की बाँग से दूर तक जाती है।"

"मीठी-वाणी" तीसरी ने उत्तर दिया, "यह वाणी सबसे दूर तक पहुंचती है।"

बूढ़े ने फैसला दिया, "तुम ठीक कहती हो। मीठी-वाणी हजारों मील तक पहुंचती है। इस घर की मालकिन होने की हकदार तुम हो।"

●

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

गाँधी जी और नारी

—राजेन्द्रकृष्ण श्रीवास्तव

स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों की एक सी ही भावनायें हैं। दोनों एक ही प्रकार का जीवन-यापन करते हैं। लेकिन अनन्त काल से किसी न किसी तरह पुरुष ने स्त्री पर आधिपत्य जमा रखा है। पुरुष ने स्त्री को अपने स्वार्थवश यह सिखाया है कि वह उस नीचे दर्जे की है। स्त्री के मन में यह बात घर कर गयी और इसी कारण उसमें अपने को हीन समझने की मनोवृति का समावेश हो चुका है। लेकिन सच तो यह है कि स्त्री में पुरुषों की स्वार्थपूर्ति और अपने को उसे पूर्ण रूप से समर्पित करने के पश्चात् भी यह सिद्ध कर दिया है कि वह किसी क्षेत्र में किसी भी दृष्टिकोण से पुरुषों से कम नहीं। धर्म-कर्म के क्षेत्र मे सीता, सावित्री, उर्मिला आदि को, त्याग के क्षेत्र में पन्ना दाई को, भक्ति के क्षेत्र में मीरा को, देशभक्ति के क्षेत्र में लक्ष्मीबाई, दुर्गावती, चाँद बीबी आदि को, शासन के क्षेत्र में श्रीमती इन्दिरा गाँधी, सुचेता कृपलानी, सरोजनी नायडू आदि को, साहित्य के क्षेत्र में सुभद्राकुमारी चौहान, महादेवी वर्मा को नहीं भुलाया जा सकेगा।

जन्म से मृत्यु तक पग-पग पर धर्म-अधर्म, सुख-दुःख, त्याग-तपस्या आदि के जितने चुनौती भरे दायित्वों की पूर्ति नारी के द्वारा संभव होती है, पुरुष द्वारा नहीं। गाँधी जी ने हरिजन के 24-2-40 के अंक में लिखा है—

"स्त्री सहने वाली है, पुरुष करने वाला है। स्त्री स्वभाव से घर की मालकिन है, पुरुष कमाने वाला है। स्त्री कमाई की रक्षा करती है और उसे बांटती है। हर जाति के दुधमुंहे बच्चों को पाल-पोस कर बड़ा करने की कला उसका विशेष धर्म और एकमात्र अधिकार है। वह सँभाल न रखे तो मानव जाति संसार से नष्ट हो जाय।"……… स्त्री अहिंसा की जीती जागती मूर्ति है। अहिंसा का अर्थ है; असीम प्रेम और असीम प्रेम का अर्थ है; कष्ट सहने की अपार शक्ति जो स्त्री जाति में ही मिलती है। पुरुष की जननी स्त्री के सिवा और किसमें यह शक्ति ज्यादा से ज्यादा प्रकट होती है। यह शक्ति स्त्री उस वक्त प्रकट करती है जब वह नौ महीने तक बच्चे को पेट में रखती है, उसका पोषण करती है और उसमें जो कष्ट व पीड़ानुभूति होती है उससे जिन्दगी और मौत का फैसला होता है। प्रसव की पीड़ा से अधिक और कोई पीड़ा नहीं होती। इस पीड़ा को सहकर भी स्त्री आनन्दित रहती है।"

गाँधीजी के उपर्युक्त विचारों से समाज में स्त्री का स्थान और कार्य का अन्दाजा लग जाता है।

गाँधीजी ने पुरुष और स्त्री की समानता पर प्रकाश डालते हुए अपने विचार निम्न प्रकार व्यक्त किये—

"स्त्री पुरुष की सहचरी है। उसकी मानसिक शक्तियाँ पुरुष से जरा भी कम नहीं हैं। उसे पुरुष के छोटे से छोटे कामों में हाथ बँटाने का अधिकार है और आजादी का उसे उतना ही अधिकार है जितना पुरुष को।…………हमारी स्त्रियों की दुर्दशा के कारण हमारे बहुत से आन्दोलन अधूरे रह जाते हैं। हमारे बहुतेरे कामों का ठीक नतीजा नहीं निकलता।"

"जिस रूढ़ि और कानून के बनाने में स्त्री का कोई हाथ नहीं था और जिसके लिए सिर्फ पुरुष ही जिम्मेदार हैं उस कानून और रूढ़ि के जुल्मों ने स्त्री को लगातार कुचला है।………पुराने जमाने का गुलाम नहीं जानता था कि उसे आजाद होना है, या कि वह आजाद हो सकता है। स्त्रियों की हालत भी आज कुछ वैसी ही है।………इसलिए काँग्रेस-वालों का यह फर्ज है कि वे स्त्रियों को उनकी मौलिक स्थिति का पूरा बोध करावें और उन्हें इस तरह की तालीम दें जिससे वे जीवन में पुरुषों के साथ बराबरी के दरजे से हाथ बँटाने लायक बनें।"

गाँधी जी ने 'यंग इण्डिया' 17-10-29 के अंक में साफ कहा कि— मैं स्त्रियों के अधिकारों के मामले में कोई समझौता स्वीकार नहीं कर सकता। मेरी राय में कानून की तरफ से स्त्री के लिए ऐसी कोई रुकावट नहीं होनी चाहिए जो पुरुष के लिए नहीं है। मैं लड़कों और लड़कियों के साथ बिलकुल बराबरी के दरजे का बर्ताव चाहूँगा।"

उन्होंने हिन्दी नवजीवन के 23-9-21 के अंक में कहा था—"स्त्री को मैं देवी समझता हूँ, अबला नहीं। स्त्री आज भी बलिदान, कष्ट सहन नम्रता, श्रद्धा और ज्ञान की प्रतिमा है और इसलिए स्त्री पुरुष दोनों में एक मात्र स्त्री ही अधिक उच्च और श्रेष्ठ है।"

"पुरुष ने स्त्री को अपनी कठपुतली माना है, स्त्री ने पुरुष की कठपुतली बनना सीखा है और आखिर में ऐसा बनना उसे आसान और सुखद मालूम हुआ है क्योंकि जब गिरने वाला व्यक्ति दूसरे को जबरन अपने साथ खींचता है तो पतन आसान होता है।

विवाह के आदर्श पर गाँधीजी ने अपने विचार 'यंग इण्डिया' के 19-8-26 के क्षेत्र में इस प्रकार व्यक्त किए—

"अगर विवाह कोई धर्मकृत्य है, जैसा कि उसे होना चाहिए; नये जीवन में प्रवेश करना है तो लड़कियों का विवाह उनका पूरा विकास होने पर ही होना चाहिए (अल्पायु में नहीं–या आर्थिक स्थिति की अस-मर्थतावश अपने से दूने आयु के या वृद्ध के साथ नहीं।) अपना जीवन भर का साथी चुनने में उनका भी कुछ हाथ अवश्य रहना चाहिए और उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि वे जो कुछ कर रही हैं; उसके क्या फल होंगे।"

अपनी आत्मकथा में उन्होंने लिखा है कि—"पत्नी पति की दासी नहीं है, पर उसकी सहचारिणी है, सहधर्मिणी है, दोनों एक दूसरे के सुख-दुःख के समान साझेदार हैं और भला-बुरा करने की जितनी स्वतन्त्रता पति को है उतनी ही पत्नी को है।"

●

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

गांधी के मिशन को विदेशी महिलायें समर्पित

—आशारानी व्होरा

विदेशियों के लिए भारतीय दर्शन और संस्कृति का अध्ययन सदैव एक आकर्षण रहा है, जो भोग पर त्याग की अंतिम विजय का सूचक है। उस पर गाँधी जी का देवतुल्य व्यक्तित्व! न जाने कितनी विदेशी विदुषियाँ गाँधी जी के संत-राजनीतिज्ञ वाले व्यक्तित्व, उनके समाज-दर्शन, उनकी आध्यात्मिक राजनीति, स्वतंत्रता की उनकी धारणा और स्वातंत्र्य-प्राप्ति के लिए उनकी अहिंसक लड़ाई जैसी नीतियों व कार्य-प्रणालियों से प्रभावित हो, भारत में खिंची चली आईं। उनमें से कई तो उनके मिशन को समर्पित हो यहीं बस गईं और उन्होंने भारत भूमि, भारतवासियों की सेवा, उनकी आजादी के लिए अपना पूरा जीवन बिता दिया।

प्रस्तुत है, कुछ प्रमुख नामों का संक्षिप्त परिचय

रोमां रोलां ने गाँधी जी से संबंधित अपनी पुस्तक में उन्हें 'दूसरे ईसा' कहा था। मेडलीन स्लेड ने रोमां रोलां से गाँधी जी के बारे में सुन कर पुस्तक खरीदी और सुध-बुध भूल कर उसे एक ही बैठक में पढ़ गईं। उन्हें लगा, यह तो वही चीज है, जिसकी उन्हें वर्षों से तलाश थी। एक आवाज थी, एक निमंत्रण था, जो उनकी भीतरी बेचैनी और आंतरिक खोज को दिशा दे रहा था। बिना किसी तर्क-वितर्क में पड़े उन्होंने अपना लक्ष्य निश्चित किया और तैयारी शुरू कर दी।

तैयारी? घर बैठे आश्रम जीवन बिताने की, कताई की, बुनाई की, हाथ के श्रम की, स्वयं निर्भरता की और सेवा की। साथ ही उन्होंने उर्दू सीखना भी शुरू कर दिया—उस समय उन्हें बताया गया था कि भारत की भाषा उर्दू ही है। फिर कुछ समय बाद भाषा संबंधी अगली जानकारी मिलने पर उन्होंने हिंदी और संस्कृत भी पढ़ना आरंभ कर दिया। मांसाहार छूट गया। जमीन पर सोने का अभ्यास शुरू हुआ। यह सारी तैयारी कर लेने के बाद उन्होंने अपनी हीरे की अंगूठी बेच कर उससे प्राप्त राशि और अपने हाथ के कते ऊन के नमूने गाँधी जी को भारत भेजे। इसी पत्र में अपनी पूर्व तैयारी का उल्लेख करते हुए उन्होंने गाँधी जी को अपने विचारों और संकल्प से सूचित किया। उत्तर मिला, संकल्प दृढ़ हो तो भारत आ जाओ और एक बेचैन आत्मा की तीर्थयात्रा आरंभ हो गई।

सुश्री मीरा बेन

कौन थीं, यह मेडलीन स्लेड? गाँधी जी की वही प्रिय शिष्या, जो मीरा बेन के नाम से विख्यात हुई। माता-पिता ने विरोध किया, पर 'रोशनी की पुकार' पर कोई विरोध कहाँ टिकता? मेडलीन स्लेड भारत आ गई। गाँधी जी से अपनी पहली भेंट को उन्होंने 'तीव्र रोशनी' की संज्ञा दी थी। इस रोशनी के आगे घुटनों तक झुक कर जब उन्होंने प्रणाम किया तो बापू ने उन्हें हाथों से उठाते हुए कहा, "आज से तुम मेरी पुत्री हुई" और पिता ने पुत्री का नया नामकरण किया—मीरा। आश्रम में रह कर मीरा सब की मीरा बेन बन गई।

मीरा बेन को जो सबसे पहला काम सौंपा गया, वह था, आश्रम के शौचालय की सफाई, पर पुत्री पिता के इस क्रूर प्यार से जरा भी विचलित नहीं हुई। उसे खुशी हुई कि वह इस दीक्षा के योग्य समझी गई। उनके अन्य काम थे, दैनिक रोजगार के लिए कपास छांटना, हिंदी पढ़ना और दोनों समय प्रार्थना। दिनचर्या अटपटी थी। जलवायु प्रतिकूल, पर आश्रमवासियों की आत्मीयता और बापू की सहृदयता ने इस कठोर साधना को सरल-सरस बना दिया। खादी की सफेदी साड़ी पहन,

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

आजीवन कुमारी रहने का व्रत ले, मीरा बेन सेवा-कार्यों में जुट गई। फिर तो आश्रम की सेवा, नारी-जागरण का कार्य, दीन-दुखियों की सेवा, दुधारू पशुओं की सार-संभाल, हरिजन-कल्याण आदि सभी कामों में रमती चली गयी।

स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेते मीरा बेन दो बार जेल गयी। जेल में ही उन्होंने रामायण, महाभारत, उपनिषदों का अध्ययन किया। 1934 में उन्होंने पहले इंग्लैंड व फिर अमरीका का दौरा किया। वहाँ स्थान-स्थान पर भाषण-मालाएं आयोजित कर गाँधी जी की रामराज्य की कल्पना और मानवतावादी विश्वराज्य के सपने का अलख जगाया। गाँधी जी के साथ गोलमेज कांफ्रेंस में जब वे इंग्लैंड गयी तो एकबारगी अपनी पूर्व आरामदेह जिंदगी का ख्याल उन्हें वापस लौटने के लिए मथ गया, पर यह कमजोरी केवल थोड़ी देर के लिए ही उभरी। शीघ्र ही तुलना करने पर उन्हें अपना वर्तमान 'स्वयं-स्वीकृत कारावास' (जैसा कि उन्होंने स्वयं लिखा है) अच्छा लगा और वे भारत लौट आईं। उन्हें याद आया कि आजादी की लड़ाई में गाँधी जी के साथ भाग लेते हुए जब भी बाहर जाती थीं तो उनके दर्शनों को उमड़ा जन-समुदाय उन्हें मानवीय प्रेम और दैवीय गुणों में श्रद्धा का एक विशाल सागर सा लगता था, जिसमें डुबकी लगा, न जाने कितने अशांत हृदय शांति का अनुभव करते थे।

गाँधी जी ने अपनी जिस शिष्या का इस कदर भारतीयकरण किया था कि अपने वैभव संपन्न जीवन की तुलना में वर्षों बाद भी उसे अपना स्वयं-स्वीकृत कारावास अच्छा लगा था, जो गाँधी जी के आदर्शों के प्रति इतनी समर्पित थीं कि आजन्म इसी भूमि की सेवा का व्रत ले, गाँधी जी के बाद भी यहीं बसी थीं, वही मीरा बेन बाद में अपनी कर्मभूमि भारत को छोड़ कर वापस क्यों चली गयी और अपना अंतिम समय उन्होंने गाँधी के देश में क्यों नहीं बिताया, यह गाँधी-भक्तों के वर्तमान मुखौटे कभी भी देखने में समर्थ नहीं हो पाएंगे?

2 अक्टूबर, 1925 को साबरमती आश्रम में गाँधी जी का जन्मदिन मनाया जा रहा था। वे जमीन पर बैठे चर्खा कात रहे थे। अन्य कार्यकर्ता भी सामूहिक कताई में शामिल थे। तभी एक विदेशी महिला ने आश्रम में प्रवेश किया। पहले तो वे इस अनोखे जन्मदिवस समारोह को देख कर चकित हुईं, फिर आदत न होने के कारण जमीन पर बैठने में कठिनाई अनुभव करने लगीं। गाँधी जी उनकी कठिनाई को भांप गए। तुरंत उठे और लकड़ी का स्टूल लाकर उन्हें बैठने के लिए दिया। अब महिला के सामने दूसरा धर्मसंकट उपस्थित हो गया—गुरु जमीन पर बैठें और इतनी दूर से दीक्षा लेने आई शिष्या ऊपर, यह कैसे हो सकता था? गाँधी जी ने उनका संकोच पढ़ा, मुस्कुराए और एक दूसरा स्टूल लाकर उस पर बैठ गए। यह महिला थीं—म्युरियल लीस्टर।

म्युरियल लीस्टर के लिए भी गाँधी जी से परिचय का आधार रोमां रोलां की वही पुस्तक थी। पुस्तक से प्रभावित हो, उन्होंने गाँधी जी और भारत के बारे में जितना पढ़ा-सुना, उसे लेकर गाँधी जी से साबरमती आश्रम में घंटों उलझीं। ढेर सी शंकाएं थीं उनके मन में—अहिंसा, सत्याग्रह, खादी, कताई, अपरिग्रह और इन सब के साथ स्वराज्य का संबंध? लंगोटी की ढाल और चरखे का हथियार लेकर एक बड़े साम्राज्य से उनकी टक्कर? अतिथियों के पाखानों की सफाई और आत्म-प्रतिष्ठा का प्रश्न? और न जाने क्या-क्या! प्रश्न, प्रश्न और प्रश्न, और एक के बाद एक समाधान। गाँठें खुलीं। शंकाएं धुलीं। जिज्ञासाओं को थाह मिली, आकुलताओं को राह और म्युरियल लीस्टर भी गाँधी जी की भक्त व शिष्या बन कर लौटीं।

मीरा बेन ने भारत में रह कर गाँधी जी के साथ काम किया तो म्युरियल लीस्टर ने गाँधी जी के निर्देशन में उसी काम को इंग्लैंड में बैठे-बैठे अंजाम दिया। गाँधी से उनका पत्र-व्यवहार बराबर चलता रहा और समय-समय पर परामर्श लेने व गाँधी जी के काम में सहायता करने वे भारत आती रहीं। दूसरी गोलमेज कांफ्रेंस के समय गाँधी जी जिस 'किंग्सले हाल' में ठहरे थे, यह वही 'कम्युनिटी किंग्सले हाल' था, जो गाँधी जी के सिद्धांतों को साकार करने के लिए म्युरियल लीस्टर व उनकी बहन चला रही थीं। किंग्सले हाल में गाँधी जी के खान-पान, रहन-सहन का निकट अध्ययन कर लिखी गई म्युरियल लीस्टर की पुस्तक 'इंटरटेनिंग गाँधी' में उनके कार्य-व्यवहार का जितनी बारीकी से चित्रण है, उतना शायद ही किसी भारतीय लेखक ने किया हो। कल्पना की जा सकती है, ब्रिटिश शासन काल में गाँधी जी के जिन सिद्धांतों का प्रचार करना भारत में बड़े जोखिम का काम था, विशेष रूप से नशाबंदी का प्रचार और भारत की आजादी का समर्थन, वह म्युरियल लीस्टर ने अपने देश इंग्लैंड में कैसे किया होगा!

1934 के बिहार भूकम्प के समय म्युरियल लीस्टर राहत कार्यों में हाथ बंटाने भारत आई थीं। गाँधी जी की हत्या का उन्हें इतना गहरा आघात लगा कि कुछ दिन के लिए सुन्न सी पड़ गयी थीं। फिर उनके लिखे पत्रों का संग्रह ले कर 'गाँधी के हस्ताक्षर' पुस्तक के प्रकाशन में जुट गयी थीं।

गाँधी-शताब्दी वर्ष में 22 फरवरी कस्तूरबा पुण्यतिथि से कर्नाटक से प्रारंभ कर सारे देश की लोक-यात्रा करने और स्थान-स्थान पर गाँधी जी का संदेश सुनाने वाली सरला बेन के नाम से भी सारे भारतवासी परिचित हैं। सत्तर वर्ष की आयु में भी अपना सामान पीठ पर बाँधकर पैदल घूम सकने में समर्थ सरला बेन नये समाज की भूमिका में मातृशक्ति के महत्व को गाँव-गाँव की स्त्री तक पहुँचाने का लक्ष्य लेकर निकली थीं। लोक मंगलकारी उदात्त वाणी से ग्रामीण बहनों को गाँधी जी का संदेश सुना कर उनमें निजी शक्ति का जागरण करती थीं और कहीं भी फोटो खिचाने से ऐसे बिदकती थीं, जैसे डाक्टर को देख कर बालक।

सरला बेन का असली नाम था—कैथरीन हेलीमैन। भगिनी निवेदिता और मीरा बेन की तरह वे भी भारत के आध्यात्म-दर्शन से खिंच कर यहाँ आईं और आकर जन-जन की सच्ची सेवा में जुट गईं। बापू के आश्रम में ही वे अपना विदेशी चोला उतार, कैथरीन हेलीमैन से सरला

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

बेन बनीं और उन्हीं की आज्ञा से वर्धा छाड़, पर्वतीय स्थान में अपनी सेवाओं का जाल बिछाने के लिए कासौनी में बस गईं, क्योंकि वर्धा की जलवायु उन्हें रास नहीं आई थी। अल्मोड़ा जिले में कासौनी स्थित 'लक्ष्मी आश्रम' उनकी अथक सेवा की ही देन है। सन् 1942 के 'भारत छोड़ो' आंदोलन के समय अल्मोड़ा में आंदोलन की भी वे अगुआ थीं। बाद में ग्राम-स्वराज्य, सर्वोदय और हिमालय क्षेत्र में पर्यावरण-रक्षा के लिए निरंतर सक्रिय रहने के साथ विनोबा जी के भू-दान आंदोलन में भी उनका योगदान कम उल्लेखनीय नहीं रहा। पर उनका मुख्य कार्य था, 'मातृशक्ति जागरण,' जिसके लिए वृद्धावस्था में भी वे पदयात्राएँ करती रहीं और देशभर में घूम-घूम कर जागरण का मंत्र फूंकती रहीं।

चंदग के कुष्ठाश्रम में जीवन के पचास वर्ष बिताने वाली मूक सेवाभावी मिस मेरी रीड का कुष्ठ सेवा कार्य-यद्यपि गांधी जी के कुष्ठ-सेवा कार्य से सीधा संबन्धित नहीं था, पर उनकी प्रेरणा बराबर इसके पीछे बनी रही। मिशन सेवा कार्यों में मिस मेरी रीड छः वर्ष तक भारत रह कर अपने देश लौट चुकी थीं, पर एक दिन अमेरिका के ओहियो वाले अपने घर में उन्होंने देखा, उनके सीधे हाथ की एक उंगली में खुजली के साथ एक लाल चकत्ता उभरा। डाक्टरों ने आपरेशन करके खाल ठीक कर दी। पर मेरी रीड को इससे संतोष नहीं हुआ। भारत में चंदग आश्रम को देखते समय की कुष्ठ रोगियों की तस्वीर उनके दिमाग में घूमने लगी। फिर गाल पर एक और चकत्ता उभर आने से जब रोग का निश्चय हो गया तो दुखित होने के बजाए उनके मुंह से निकला, "ईश्वर ने यह रोग मुझे किसी भलाई के लिए दिया है। मैं भारत उन्हीं कुष्ठ रोगियों के बीच लौट कर उनकी सेवा में अपना सारा जीवन बिताऊँगी। फिर भारत आकर उनका सेवा-कार्य और इस रोग के उपचार के लिए जड़ी-बूटियों के अध्ययन-अनुसंधान का कार्य तथा रोगियों पर उनके प्रयोग का कार्य साथ-साथ चलने लगे। यह दैवी वरदान ही, उनकी सेवा का फल हो या उनके प्रयोगों की सफलता, उनका रोग प्रारंभिक अवस्था में ही ठीक हो गया था। पर वे स्वदेश नहीं लौटीं। अपने जीवन के शेष सारे पचास लम्बे वर्ष उन्होंने भारतीय कुष्ठ रोगियों की अनवरत सेवा में बिता दिए। गांधी जी को इस संकल्प की धनी, भारत की मूक सेविका पर बड़ा गर्व था।

लखनऊ के विख्यात 'साक्षरता निकेतन' की संचालिका श्रीमती वेल्दी.एच. फिशर गाँधी जी की हत्या के केवल छः महीने पहले ही उनसे मिली थीं। उस समय वे अपनी चौथी भारत-यात्रा से लौट कर अमेरिका वापस जा रही थीं। गांधी जी ने उनसे कहा, आप अगली बार भारत आयें तो गांवों में अवश्य जाएं, असली भारत गांवों में ही बसता है। उनके साथ रह कर उनका अध्ययन करें और हो सके तो उनकी सहायता भी। बस इतनी सी बात श्रीमती फिशर के मन में बहुत बड़ी प्रेरणा बन कर समा गई। अगली बार 1942 में जब वे नवसाक्षरोपयोगी पुस्तकों व पांडुलिपियों का संग्रह करने भारत आयी तो गांधी जी की अनुपस्थिति में उनके शब्द निरन्तर उनके मस्तिष्क में चक्कर काटने लगे। उन्हें लगा, गाँधी जी के ग्रामीण सेवाकार्य को किसी तरह आगे बढ़ाना चाहिए। लेकिन किस तरह ? वे सोच ही रही थीं कि तभी प्रौढ़-साक्षरता आंदोलन में सहायता के लिए इलाहाबाद कृषि संस्थान का निमंत्रण उन्हें मिला और राह निश्चित हो गई। इस प्रकार इस प्रसिद्ध साक्षरता-सदन या 'लिटरेसी हाऊस' की नींव रखी गई। तब से अन्त तक श्रीमती फिशर इसी अभियान को समर्पित रहीं और अति वृद्धावस्था (101 वर्ष की आयु) में अशक्त होकर ही स्वदेश लौटीं।

'इंडियन होम रूल लीग' की संस्थापिका, कांग्रेस की पहली महिला अध्यक्ष तथा प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी श्रीमती ऐनी बेसेंट भी सत्य की खोज में ही भारत आई थीं और आकर नारी-जागरण, समाज-सेवा व भारत की आजादी की लड़ाई में जुट गई थीं। उनका नाम महात्मा गांधी के अनुयायियों में नहीं, सहयोगियों में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। भारतीय राष्ट्रीयता ग्रहण कर थिओसोफिकल सोसाइटी के माध्यम से समाज-कार्य तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस व 'इंडियन होम रूल लीग' के माध्यम से राष्ट्र-कार्यों में उनका योगदान भारतीय स्वाधीनता के इतिहास में अमर है।

ऐसा ही एक अन्य महत्वपूर्ण नाम है, मार्गरेट कजिंस। भारत में अखिल भारतीय महिला संगठनों की स्थापना और 'महिला मताधिकार आंदोलन' के संचालन का श्रेय उन्हें ही प्राप्त है। श्रीमती कजिंस भी महात्मा गांधी के सहयोगियों में से एक थीं। सरोजिनी नायडू के साथ मिलकर उन्होंने राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रत्येक कार्य में योग दिया। पर उनका अपना मुख्य कार्य था, नारी-जागरण और नारी-उत्थान। उनके बारे में कहा जाता था, 'आधे भारत (भारतीय स्त्रीत्व) को समर्पित एक पूर्ण व्यक्तित्व।' भारत आने से पूर्व मार्गरेट कजिंस आयरलैंड में स्त्री-स्वातंत्र्य के लिए आंदोलन चला चुकी थीं। भारत में यही कार्य करने के लिए उन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता ग्रहण की थी। 'अखिल भारतीय महिला सम्मेलन' जैसी भारतीय महिलाओं की अग्रणी संस्था उन्हीं की देन है। इसकी संस्थापिका थीं वे और नारी-अधिकारों की हर आरंभिक लड़ाई की सूत्रधार।

डॉ० इडा स्कडर, मदर टेरेसा, इजाबेला थोबर्न, युजीन पीटरसन जैसे और कई नाम भी लिए जा सकते हैं, जो गांधी जी के सीधे संपर्क में न आकर भी उनके आदर्शों व सिद्धांतों से प्रभावित रहीं। इनमें से इडा स्कडर और इजाबेला थोबर्न गांधी जी के समकालीनों में से थीं, जो उनके संपर्क में बहुत बाद में आई थीं। युजीन पीटरसन भारत के योग दर्शन से प्रभावित हो, पहली बार 1927 में भारत आई थीं और फिर भारत की आध्यात्मिक स्वयं-दूत बनकर भारत का विश्वशांति का संदेश सारी दुनिया को सुनाने के लिए निकल पड़ी थीं। 'इन्दिरा देवी' के भारतीय नाम से विभूषित हो, यह नारी राजघाट से 'भारत-ज्योति' लेकर विश्व-भ्रमण पर निकली थी। 'अंधेरे के खिलाफ रोशनी का जिहाद' और 'हिंसा के विरोध में शांति की आवाज' लिए उनके हाथों

(शेष पृष्ठ 34 पर)

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

महात्मा गांधी और टालस्टाय

—गायत्री कौल

शान्तिवाद का सिद्धान्त नवीन नहीं बल्कि काफी प्राचीन है। यदि हम देखें तो यूनानी स्टोइकवाद, पश्चिम में यहूदी धर्म, ईसाई धर्म और पूर्व में मुस्लिम एवं बौद्ध धर्म इसके पूर्व प्रतीक हैं। इस प्रकार शान्तिवाद को अपने स्वीकृत रूप में 19वीं शताब्दी में लियो टॉलस्टाय ने प्रस्तुत किया। उन्होंने शान्तिवाद को समकालीन सभ्यता के सामाजिक दर्शन के रूप में देखा। सैद्धान्तिक रूप से इस सिद्धान्त को काफी सीमा तक टॉलस्टाय ने उद्धृत किया; परन्तु मोहनदास कर्मचन्द गाँधी ने भारत और उपनिवेश शासित देशों में इसका यथार्थ अनुवाद किया।

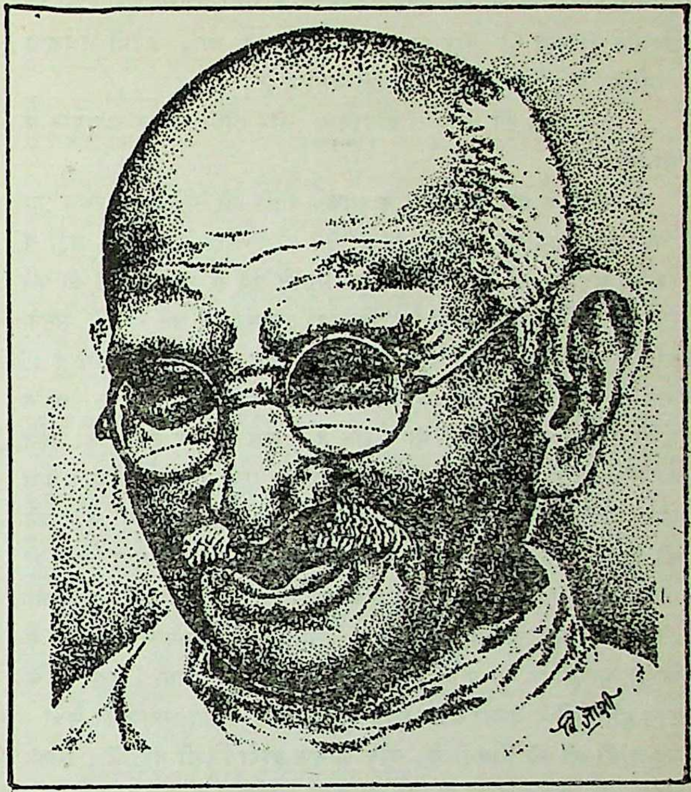

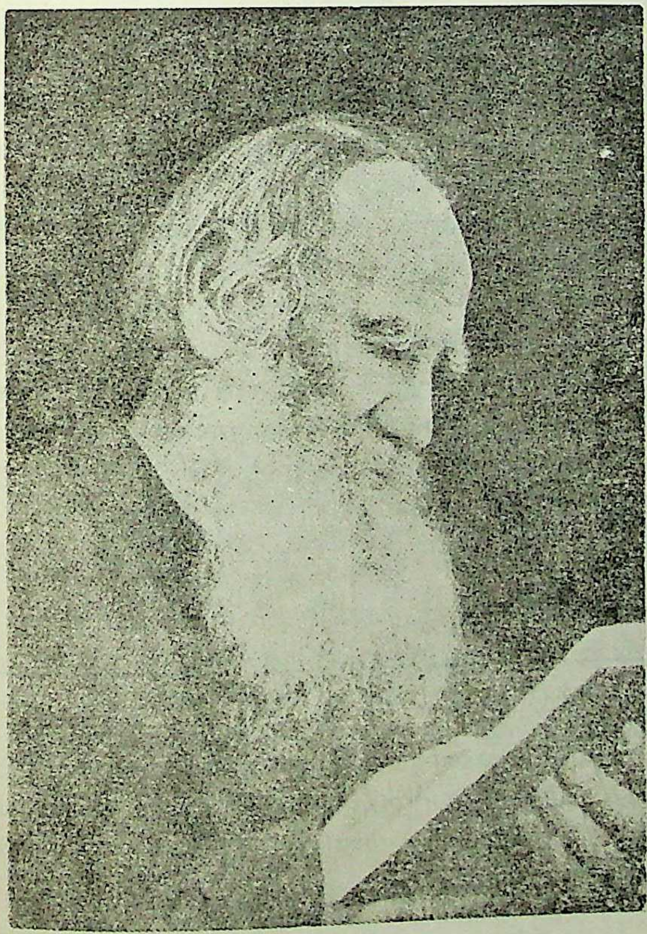

लियो टालस्टाय

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं में मोहनदास कर्मचन्द गाँधी एक ऐसे नेता थे जो लियो टॉलस्टाय से सर्वाधिक प्रभावित थे। दक्षिण अफ्रीका के अपने इक्कीस साल के प्रवास में, कोमारोव के अनुसार गाँधी जी पर टालस्टाय का निर्णायक प्रभाव पड़ा। 1890 में गाँधी जी जब फ्रांस की यात्रा पर गये तो पेरिस में 'एफिल टॉवर' को देखकर उन्हें लियो टॉलस्टाय के वे शब्द याद आ गये जो टॉलस्टाय ने इस फ्रांसीसी स्मारक के लिये कहा था। उन्होंने कहा था, 'एफिल टॉवर मानव की मूर्खता का परिचायक है न कि बुद्धिमता का।' गाँधी जी को टॉलस्टाय के यह शब्द उपयुक्त लगे। लुई फिशर ने 'इंडियन रिव्यू' में महात्मा गाँधी और टॉलस्टाय के प्रति लिखते हुये कहा कि एफिल टॉवर के द्वारा ही महात्मा गाँधी का प्रथम परिचय टॉलस्टाय से हुआ।

शनैः-शनैः गाँधी जी ने अपने विचार मंथन के द्वारा सत्य मार्ग की खोज जब प्रारम्भ की तब उन्होंने विभिन्न धर्मों का अध्ययन करना प्रारम्भ किया। इसी मध्य उन्होंने लियो टॉलस्टाय को भी पढ़ा और वह अपनी विचारधारा एवं भविष्य के कार्यों के प्रति इस रूसी संत द्वारा परिलक्षित हुये। इसी तथ्य को जुलाई 1,1960 के 'प्रावदा' में डा० राजेन्द्र प्रसाद के कथन द्वारा पुष्टि भी मिली।

टॉलस्टाय ने जिस समय शान्तिवाद के सिद्धान्त को अंकुरित किया और 1893 में उन्होंने 'किंग्डम ऑफ गॉड इज विदिन यू' लिखा, उस समय जारवादी रूस में राजनैतिक एवं आर्थिक अव्यवस्था थी। लियो

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

टॉलस्टाय का मत था कि भौतिक विकास के साथ नैतिक मूल्यों की भी अवनति हो रही थी और मानवतावाद टूट रहा था। अपनी लघुकथा 'प्रमोटिंग ए डेविल' में उन्होंने यही दर्शाया है।

इसी तथ्य की मीमांसा टॉलस्टाय और गाँधी के पत्र व्यवहार में भी होती है।

गाँधी के पत्र टॉलस्टाय के नाम—गाँधी जी ने अपना प्रथम पत्र लियो टॉलस्टाय को 1 अक्टूबर 1909 को इंग्लैण्ड से लिखा, जहाँ वे ब्रिटिश सरकार के अधिकारियों से मिलने गये थे। गाँधी जी का पत्र इस प्रकार से प्रारम्भ होता है, "कि क्या ट्रॉसवाल में घट रहा है उसके प्रति मैं आपके ध्यान को आकर्षित करने की स्वतन्त्रता चाहता हूं।" बाद में गाँधी जी अफ्रीका में भारतीयों की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हैं और साथ ही यह भी लिखते हैं, "मुझे आपके लेखों को पढ़ने का सौभाग्य मिला, जिसने मेरे मस्तिष्क पर एक गहन व अमिट प्रभाव छोड़ा है।" इसके साथ ही गाँधी जी द्वारा उस पत्र को 'हिन्दू' में छापने की अनुमति भी माँगी गयी। टॉलस्टाय के पत्रोत्तर के प्राप्त होते ही गाँधी जी ने एक अन्य पत्र 10 नवम्बर 1909 को यसनया पोलयाना को भेजा जिसमें उन्होंने ट्रासवाल के अन्यायी और दमनकारी शासन के विरुद्ध भारतीयों के शान्तिमय संघर्ष का उल्लेख किया। इस पत्र के साथ गाँधी जी ने अपनी आत्मकथा की एक प्रति भी टॉलस्टाय को भेजी। यह गाँधी जी की जीवनी जे० डोक जोसेफ़ द्वारा लिखी गई थी। इसका शीर्षक था 'महात्मा गाँधी—एक भारतीय देशभक्त दक्षिण अफ्रीका में। इसमें दक्षिण अफ्रीका में भारतीय अधिवासियों के शान्तिपूर्ण संघर्ष के विषय में गाँधीजी के विचार समाहित हैं। गाँधी जी ने इस पुस्तक को टॉलस्टाय के विचारार्थ भेजा क्योंकि वे ट्रॉसवाल के भारतीयों के संघर्ष के लिये टॉलस्टाय की अभिरुचि और सहानुभूति के प्रति बहुत अधिक उत्सुक थे। इस संघर्ष के वास्तविक महत्व को बताते हुये गाँधी जी ने टॉलस्टाय से अभियाचना की कि वह अपने प्रभाव को इस आन्दोलन को लोकप्रिय बनाने में प्रयुक्त करें तथा सहयोग दें।

गाँधी जी ने टॉलस्टाय के पत्रोत्तर को 'हिन्दू' की भूमिका में सम्पादित किया और उसे वृहद स्तर पर प्रचारक के रूप में लिया। 1921 में इस पत्रवार्ता में 24 प्रश्नों की उत्तर श्रृंखला को गाँधी जी ने 'यंग इन्डिया' में द सीक्रेट ऑफ़ इट' शीर्षक से लिखा। उनमें से एक प्रश्न था—'अपने सम्बन्धों में आप टॉलस्टाय को कहाँ पाते हैं?' गाँधी जी का उत्तर था; 'एक समर्पित प्रशंसक जिसने अपनी जिन्दगी में बहुत कुछ उनसे पाया।'

गाँधी जी का पत्र व्यवहार प्रसिद्ध रूसी लेखक टॉलस्टाल के जीवन के अन्तिम दिनों तक चलता रहा। हमें यह कहने की आवश्यकता नहीं कि टॉलस्टाय के पत्रों ने हमेशा गाँधी जी को प्रोत्साहित किया। यद्यपि टॉलस्टाय के प्रभाव की आलोचना 'पॉवलोविक' जैसे लेखकों ने की है, उनके अनुसार टॉलस्टाय का प्रतिक्रियावादी प्रभाव रूस से अधिक भारत में था। 'फिशमैन' के कथनानुसार टॉलस्टाय के लेखन कार्य द्वारा उपनिवेशवादी दासता में एक नवीन जागरूकता एवं साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष का नव दृष्टिकोण उत्पन्न हुआ। साम्राज्यवाद के विरुद्ध इन अस्त्रों में महात्मा गाँधी द्वारा प्रयुक्त 'सत्याग्रह आन्दोलन' इस रूसी संत द्वारा ही प्रभावित था। 'असहयोग' और 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' महात्मा गाँधी के नेतृत्व में भारतीय जन जागरण की आवाज को मुखरित करने में सहायक सिद्ध हुये। इनमें सत्य, प्रेम और शान्ति को मानव की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि स्वीकार किया गया है। महात्मा गाँधी की अहिंसा द्वारा संघर्ष करने की प्रणाली बहुत सीमा तक टॉलस्टाय के सैद्धान्तिक विचारों पर ही आधारित थी।

यदि हम इस सिद्धान्त का परीक्षण करें तो देखेंगे कि कई दार्शनिकों एवं विचारकों ने इसके तथ्य भाष्य पर विचार किया है। जॉन डीवी ने अपनी पुस्तक 'द पब्लिक एन्ड इट्स प्राब्लम्स' में लिखा है 'कि यदि मनुष्य अपने साथियों से प्रेम नहीं कर सकता जिनको वह देखता और जानता है तो वह उस ईश्वर से प्रेम कैसे कर सकता है, जिसको उसने कभी देखा ही नहीं।' इस सिद्धांत को गाँधीजी पूरी तरह से स्वयं में समाविष्ट किये हुये थे।

अतः हम कह सकते हैं कि दक्षिणी अफ्रीका के अपने प्रवास में गाँधी जी पर लियो टॉलस्टाय के जिन विचारों और दर्शन का प्रभाव पड़ा उस पूर्वाभ्यास का यथाति रूप भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन परिलक्षित हुआ। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन जो कि 1920 के पश्चात् मुख्य रूप से 'गाँधी आन्दोलन' बन गया था, वह अपरोक्ष रूप से टॉलस्टाय से प्रभावित था।

●

(पृष्ठ 32 का शेष)

में एक प्रज्ज्वलित ज्योति देखकर लोग उन्हें 'दीपक की देवी' कहते थे। राजघाट से प्रस्थान के पूर्व इस रूसी इन्दिरा देवी ने तत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्रीमती इन्दिरा गांधी से भेंट कर जब उन्हें 'अंधेरे में रोशनी' का प्रतीक दीपक भेंट किया तो देखने वालों के लिए एक समां बंध गया था।

भारत के आध्यात्मिक व मानवीय मूल्यों की जिस ज्योति को जलाए रखने में विदेशी नारियां इतनी प्रयत्नशील रही हैं, उसे भारतीय नारी, जो अपनी स्वतंत्रता व समानाधिकारों के लिए गांधी जी की इतनी ऋणी है, क्या बुझने देगी?

●

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

बापू के कुछ प्रेरक प्रसंग

—वीणा श्रीवास्तव

भारत की आजादी में पूज्य बापू का योगदान स्तुत्य है। बापू ने तो अपना काम कर दिया—तन-मन-धन देश के लिए न्यौछावर करके, लेकिन अफसोस है कि बाद के नेताओं ने सब गुड़-गोबर कर दिया। गाँधी जी भारत में 'रामराज्य' की स्थापना का स्वप्न अपने भीतर सँजोये हुए थे। उन्होंने इसके लिए महत्वपूर्ण निर्देश, विचार व परामर्श भी दिये, किन्तु आज के राजनीतिज्ञ बापू के विचारों को ताक पर रखकर, अपने क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति में जुटे हुए हैं।

हर साल 2 अक्टूबर (गाँधी जयन्ती) व 30 जनवरी (बापू की पुण्य तिथि) को कुछ ढोंग रचाकर यानि आयोजन आदि करके हम समझ लेते हैं कि हमने बापू पर एहसान कर दिया, बापू का सम्मान कर दिया। लेकिन, क्या यही काफी है? क्या यहीं तक हमारा कर्तव्य है कि हम थोथी औपचारिकता का पालन भर कर लें? नहीं, कदापि नहीं। मंझधार में डगमगाती देश की नौका को पार लगाने के लिए हमें बापू के पवित्र जीवन से सबक सीखना होगा, उससे प्रेरणा लेकर उन पर अमल करना होगा। बापू ने तो स्वयं ही सबसे कहा था—'मेरा जीवन ही मेरा सन्देश है।'

नीचे वर्णित कुछ प्रसंग बापू द्वारा हमारे लिए स्थापित पाठ हैं। हमें उनसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।……काश! आज के लोग बापू के आदर्शों का अंश भी अपने में आत्मसात कर लें तो देश की स्थिति सुधरते देर नहीं लगेगी।

प्रथम प्रसंग है बापू के विद्यार्थी जीवन का। कक्षा में गणित के अध्यापक आए और पढ़ाने लगे। पढ़ाते-पढ़ाते वे रुके और बच्चों से कहा—'बच्चों! मैं तुमसे एक सवाल पूछता हूँ।'

बच्चे सावधान हो गए। अध्यापक ने प्रश्न किया—'यदि तुम अपने माताजी व पिता जी के साथ कहीं जा रहे हो, तुम्हारे एक ओर तुम्हारे पिताजी तथा दूसरी ओर तुम्हारी माताजी हैं और ऐसे में सामने से एक बाघ आ जाये, तो तुम क्या करोगे?'

बच्चे अपनी-अपनी तरह से उत्तर देने लगे—'जी, हम भाग जाएंगे', 'जी, गोद में चढ़ जाएंगे', 'जी, पीछे हो जाएंगे।' आदि-आदि, किन्तु, मोहनदास नामक एक बालक अब तक चुप बैठा था। अध्यापक ने उससे कहा—'अच्छा तुम बताओ मोहनदास, तुम क्या करोगे?'

'जी, मैं दौड़कर बाघ के पास चला जाऊँगा, ताकि माता-पिता की रक्षा हो सके।' बालक मोहनदास बोला।

अध्यापक उसके उत्तर से बड़े खुश हुए। उन्होंने मोहनदास की पीठ थपथपाई। बचपन में इतने उच्च विचारों वाले बालक मोहनदास ने ही बाद में बापू के रूप में भारत को नई दिशा प्रदान की।

एक प्रसंग बापू की स्वाभिमान भावना का। घटना इंग्लैंड की है, जबकि बापू गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने इंग्लैंड गए थे। उनके साथ देश-विदेश के अनेक समाचार प्रेषक (संवाददाता) भी गये थे। ये संवाददाता लोग बापू से सम्बन्धित घटनाओं को बड़े-बड़े विचित्र तरीकों से प्रस्तुत किया करते थे, जिनमें कई बार काल्पनिकता की अधिकता भी होती थी।

स्लोकोब नामक एक संवाददाता ने 'इवनिंग स्टैन्डर्ड' पत्र में गांधीजी की उदारता की प्रशंसा करते हुये यह लिख डाला कि जब प्रिंस ऑफ वेल्स भारत गये थे, तब गाँधीजी ने उन्हें दण्डवत किया था।

गाँधीजी ने यह पढ़ा तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, साथ ही क्रोध भी आया। उन्होंने स्लोकोब को बुलाया और शान्त स्वर में कहा—'मि० स्लोकोब, आपने जो लिखा है, वह कल्पनाशक्ति को भी लांछित करने वाला है। मैं भारतवर्ष के व्यक्ति अछूत के माने न केवल घुटने सही टेक सकता हूँ, बल्कि उसकी चरण रज भी ले लूंगा, क्योंकि उसे पददलित करने में मेरा भी हिस्सा रहा है। परन्तु प्रिंस ऑफ वेल्स तो दूर, मैं बादशाह तक को दण्डवत नहीं करूँगा। वह एक उद्दण्ड सत्ता का प्रतिनिधि है। एक हाथी भले ही मुझे कुचल दे, पर मैं उसके सामने सिर न झुकाऊँगा। परन्तु, अनजाने में यदि चींटी पर मेरा पैर पड़ जाये, तो मैं उसको प्रणाम कर लूंगा।'

स्लोकोब का सिर शर्म से झुक गया।

बापू कोई भी कार्य छोटा नहीं समझते थे। उन्हें किसी भी कार्य को करने में हीनता महसूस नहीं होती थी। उनका कहना था कि हमें अपने सब कार्य अपने हाथों ही करने चाहिए। दो प्रसंग बापू की इसी विचारधारा से सम्बन्धित प्रस्तुत हैं—

प्रथम प्रसंग उन दिनों का है, जबकि बापू को सादी कैद की सजा दी गई थी और वे यरवदा जेल में थे।

बापू वहाँ अपनी पसन्द के ही कपड़े पहनते थे। कैदी के वस्त्र पहनने का नियम उन पर लागू नहीं होता था। एक दिन बापू ने श्री शंकरलाल बैंकर को देखा, जिनकी धोती थोड़ी फट गई थी। बापू बोले—'आपकी यह धोती तो फट गई है। आप दूसरी क्यों नहीं पहनते?'

'महंगाई है।' बेंकर साहब ने जवाब दिया।

'फिर इसे ही सी क्यों नहीं लेते?' बापू ने फिर कहा।

'मुझे सीना नहीं आता।' बैंकर साहब ने कहा।

'तो लाओ मुझे दे दो। मैं अभी सी कर दे दूंगा।' और शंकर लाल के ना-ना करने पर भी उन्होंने उनसे धोती ले ली। सिलने के पश्चात् लौटाते हुए बोले—'मैं ऐसे छोटे-छोटे काम बहुत शौक से करता हूँ और अवकाश के समय में सीखता भी हूँ।'

शंकरलाल बैंकर बापू की महानता के आगे नतमस्तक हो गए।

(शेष पृष्ठ 41 पर)

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सशक्त और साहसी महिला इन्दिरा गांधी

—राजेन्द्र कृष्ण

स्वतन्त्र भारत की प्रथम महिला प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की 31 अक्टूबर 1984 को प्रात: 9–20 मिनट पर उनके ही रक्षकों ने गोलियों के अमानुषिक प्रहार कर मौत के घाट उतार दिया। 30 जनवरी 1948 को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की हत्या के पश्चात् यह दूसरी विश्व को शोक संतप्त करने वाली हत्यायी घटना थी। इस अपूर्णीय क्षति पर देश ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व भाव विह्वल हो फफक-फफक कर रो उठा। विश्व के महानतम नेताओं में से एक, देश की भीषण से भीषण समस्याओं का समाधान, विषम परिस्थितियों में भी विचलित न होने वाली धैर्य एवं साहस की अदम्य ज्योति अकस्मात विलीन कर दी गयी। बौराई एवं पगलाई हिंसा ने देश का वह दीपक बुझा दिया जिसके प्रकाश से अभी देश का भविष्य वर्षों तक प्रकाशित होना अपेक्षित था। इस पगलायी हिंसा ने देश को नेतृत्वविहीन करके फिर एक बड़े संकट के भंवर में फँसने जैसी स्थिति पर प्रश्न चिन्ह सा लगा दिया था। देश के नेतृत्व को अभी वर्षों ऐसे ही नेतृत्व की अपेक्षा थी लेकिन……… ।

यह किंचित अतिश्योक्ति नहीं कि श्रीमती इन्दिरा गाधी भारत देश की ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व की बीसवीं सदी की सर्वाधिक सशक्त और साहसी महिला थीं। 1966 से 1984 के मध्य लगभग 18 वर्षों तक उन्होंने अपना कुशल शासन संभाला। बीच में दो वर्ष के लिए जनता शासन हो गया था। इतनी लम्बी अवधि तक अबाध रूप से विश्व के सबसे बड़े गणतन्त्र की शासनाध्यक्ष बनने का सौभाग्य उनके अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिणाम था। यह निरन्तरता उन्हें न तो राजकुलों की तरह उत्तराधिकार में मिली थी और न तानाशाहों की तरह निरंकुश होकर उन्होंने हथियायी ही थी।

19 नवम्बर 1917 को इलाहाबाद के आनन्द भवन में जन्मी श्रीमती गांधी की आरम्भिक शिक्षा स्विट्जरलैण्ड और आक्सफोर्ड तथा भारत में पुणे, बम्बई, विश्वभारती, शान्ति निकेतन जैसी उच्चस्तरीय शिक्षण संस्थानों में हुई। मां कमला नेहरू तथा पिता जवाहर लाल ने बड़े प्यार से प्रियदर्शिनी इन्दिरा नाम रखा था। इन्दिरा जी को स्वतंत्रता संग्राम में जुड़ने का सौभाग्य भी बाल्यावस्था में ही प्राप्त हो गया था। उन्होंने बाल चर्खा संघ तथा असहयोग आंदोलन के दौरान कांग्रेस पार्टी की सहायता करने के लिए 1930 में ही बच्चों की 'वानर-सेना' का गठन किया था। अपने पिता व परिवार के माध्यम से श्रीमती गांधी विभिन्न प्रमुख राष्ट्रीय नेताओं के निकट संपर्क में आयीं। उन पर गांधी जी के आदर्शों का अत्यन्त प्रभाव पड़ा था।

इन्दिरा जी अदम्य साहस और आत्मविश्वास की धनी थीं। संकट की घड़ियों में वे कभी विचलित नहीं हुई। राष्ट्रीय आंदोलन के समय नेहरू परिवार के सभी सदस्यों ने राजसी सुख, वैभव को त्याग कर महात्मा गांधी की प्रेरणा पर सत्य अहिंसा का व्रत लिया था। इन्दिरा जी ने उस समय साहस और आत्म विश्वास बटोरा जब कि पिताजी जेल की यात्रायें करने में व्यस्त थे और मां रुग्णावस्था में ही अकाल मृत्यु। ऐसे समय में भी वे राष्ट्रसेवा से विचलित न हुई। मात्र तेरह वर्ष की अल्पायु में पिताजी के पत्रों के माध्यम से उन्होंने सम्पूर्ण विश्व की झलक देखी। बाद में विश्व के अनेकों राष्ट्राध्यक्षों, शासनाध्यक्षों और राजनैतिक दलों के प्रमुखों, लेखकों, बुद्धिजीवियों से मिलने का सुअवसर भी मिला और राजनीति में बहुत कुछ सीखा और इन्हीं सबके परिणाम स्वरूप वे भारतीय कांग्रेस कमेटी की अध्यक्षा और बाद में देश की प्रधानमंत्री बनीं।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद श्रीमती गांधी अपने पिता की अधिकारिक अतिथेयी बन गईं। देश-विदेश के दौरों में वे पिता के साथ ही जाती थीं। अपने यशस्वी पिता से ही उन्होंने शासन तंत्र और कूटनीति का ज्ञानार्जन किया। सन् 1955 से उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की गतिविधियों में सक्रिय भाग लेना शुरू कर दिया था। 1959-60 में उन्हें एक वर्ष के लिए इसका अध्यक्ष चुना गया। स्व० लालबहादुर शास्त्री के मंत्रिमंडल में 1964 में सूचना और प्रसारण मंत्री बनाया गया था। शास्त्री जी के आकस्मिक निधन के बाद वे जनवरी 1966 में भारत की प्रधानमंत्री बनीं। तब से मार्च 1977 तक उन्होंने विभिन्न चुनौतियों और कठिन परिस्थितियों में निरन्तर देश का नेतृत्व किया। वे 1977 के चुनावों में पराजित हुईं परन्तु जनवरी 1980 में पुन: भारत की प्रधान मंत्री बनीं और तब से 31 अक्टूबर 1984 तक उन्होंने संपूर्ण देश की बागडोर अपने हाथ में रखी। वे सामाजिक कल्याण एवं संस्कृति से संबन्धित अनेक संगठनों तथा संस्थानों से जुड़ी थीं। उनका कार्य और उनकी कुशलता ही उन्हें मनोरंजन व विश्राम प्रदान करता था। वे 17–18 घण्टे प्रतिदिन कार्य करती थीं। गरीबी हटाने और राष्ट्र की चतुर्मुखी प्रगति के लिए 20 सूत्री कार्यक्रम शुरू किया। श्रीमती गांधी को समूचे विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों और संस्थानों ने डाक्टर की मानद उपाधियों से सम्मानित किया। उन्होंने अनेक प्रतिष्ठित राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किये। 1972 में उन्हें 'भारत-रत्न' की उपाधि से अलंकृत किया गया। इनकी सूक्ष्मदृष्टि एवं दूरदर्शिता के फलस्वरूप में भारत अंतरिक्ष एवं परमाणु अनुसंधान कार्यक्रमों की उन्नति और विकास हुए। उन्हीं के प्रोत्साहन से सम्पूर्ण विश्व में प्रशंसनीय एशियाई खेलों का 1982 में नई दिल्ली में आयोजन हुआ।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

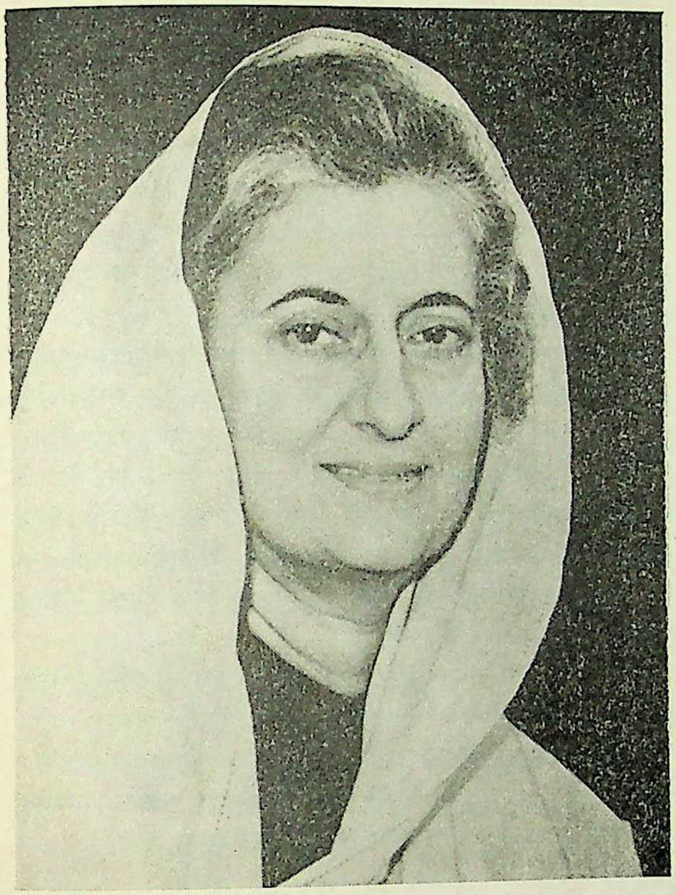

इन्दिरा गाँधी कुछ पावन प्रसंग

—वीणा श्रीवास्तव

स्वर्गीया प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने 1966 में पहली बार प्रधानमंत्री पद सँभाला था और 31 अक्टूबर, 1984 को अपनी हत्या होने तक वह मार्च, 1977 से जनवरी, 1980 के समय को छोड़कर लगातार प्रधानमंत्री पद पर रहीं। लगभग 16 साल उन्होंने इस गौरवपूर्ण पद को सँभाला। इन्दिरा गाँधी ने अपनी लगन, कड़े परिश्रम, दृढ़ संकल्प के बल पर महानता हासिल की और विश्व के प्रमुखतम नेताओं में उनकी गिनती हुई।

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू को युग दृष्टा कहा जाता है। वर्तमान आधुनिक भारत की नींव उन्होंने ही रखी। द्वितीय प्रधानमंत्री श्रीलालबहादुर शास्त्री बहुत कम समय तक इस पद पर रह पाए। तृतीय प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी को नेहरू जी के सपनों के भारत को साकार रूप देना था। इन्दिरा जी ने कृषि, विज्ञान, तकनीकी व रक्षा के क्षेत्र में प्रगति के लिए भीषण प्रयत्न किए और अन्ततः भारत ने वह विलक्षण प्रगति की कि विश्व चकित रह गया।

इन्दिरा जी ने देश को मजबूती, आत्म निर्भरता प्रदान की। खाद्य, कृषि व विज्ञान के क्षेत्रों में भारत की सफलताएँ चमत्कारिक हैं। आज भारत विश्व के गिने-चुने शक्तिशाली राष्ट्रों में है। एक स्त्री होते हुये भी इन्दिरा जी ने जिस कौशल से कार्य-संचालन किया, वह आश्चर्य-जनक ही कहा जाएगा।

एक दिन स्व० जगजीवन राम ने उनसे कहा—'आपने तो वे काम कर दिखाए, जो पुरुष भी नहीं सकते।'

इस पर इन्दिरा जी ने उत्तर दिया था—'शायद आपको मालूम नहीं होगा कि जब मेरा जन्म हुआ था तो हमारे घर के मुन्शीजी ने मुझे लड़का समझकर ही आशीर्वाद दिया था।'

इन्दिरा जी में बचपन से ही साहस भरा हुआ था। मात्र 13 वर्ष की अल्पायु में इलाहाबाद में वानर-सेना का गठन करना साधारण बात नहीं थी। स्वतन्त्रता संग्राम में योगदान देने का नन्हीं इन्दु का यह कौतुक भरा कार्य था। इसी प्रकार शान्ति निकेतन में पढ़ते समय एक बार उन्होंने प्रख्यात चित्रकार नन्दलाल बोस का जीवन अपने साहस के बल पर बचाया था। किस्सा इस प्रकार बताया गया है—

घटना 1935 की है। तब इन्दिरा जी शान्ति निकेतन में पढ़ रही थीं। नन्दलाल बोस अपने छात्र-छात्राओं को लेकर एक अध्ययन दौरे पर निकले। बंगाल के एक छोटे से रेलवे स्टेशन पर रेल पटरियाँ पार करते समय उनकी चप्पल पटरी में फँस गई और धोती तारों में उलझ गई। इससे बोस बाबू एकाएक घबरा गये और अपनी धोती सँभालने लगे।

तभी दूर से गाड़ी आती दिखाई दी। गाड़ी उसी पटरी पर से पार होती। नन्द बाबू अपने को पटरियों से हटा नहीं पा रहे थे और गाड़ी तेजी से नजदीक आती जा रही थी। सब छात्र-छात्राएँ घबरा गए। किसी का दिमाग काम नहीं कर रहा था। लगा कि आज तो नन्दलाल बोस का अन्तिम दिन है।

मगर इन्दिरा ने विलक्षण सूझ-बूझ व साहस से काम लेते हुए नन्दलाल बाबू को पटरियों से खींच लिया। उनकी चप्पल टूट गई और धोती भी फट गई। तभी धड़धड़ाती हुई निकल गई। साहसी शिष्या ने अपने गुरु के प्राण बचा ही लिये।

प्रधानमंत्री जैसे पद पर पहुँचकर भी वह छोटी से छोटी चीजों का ध्यान रखती थीं, इस सम्बन्ध में एक प्रसंग प्रस्तुत है—

इन्दिरा गाँधी का सौन्दर्य बोध कितना जागृत था तथा वह छोटी-छोटी बातों पर कितनी गहराई से ध्यान देती थीं, इसका जिक्र

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

श्री एम० एल० खुराना ने किया । श्री खुराना ने बतलाया कि 1976 में श्रीमती गाँधी को जब यह मालूम हुआ कि गुलाबी नगर जयपुर की की बदरंग इमारतों पर रंग-रोगन किया जाने वाला है, तो उन्होंने (इन्दिरा जी ने) राजस्थान सरकार से कहा कि रंग भड़कीला न मालूम पड़े ।

श्री खुराना उन दिनों राजस्थान के मुख्य सचिव थे । इन्दिरा जी की सलाह उनके पास पहुँची । वे बड़े अचम्भे में पड़े । वस्तुत: जयपुर की बदरंग इमारतों पर रंग-रोगन किये जाने की खबर केवल एक अखबार के किसी कोने में छपी थी, लेकिन इन्दिरा जी की जागरूक दृष्टि से वह खबर बच न सकी थी ।

दूसरों का इन्दिरा जी कितना ख्याल रखती थीं, इसका एक संस्मरण श्रीमती तेजी बच्चन (अमिताभ बच्चन की माता जी) ने बतलाया है । अपने संस्मरण में उन्होंने कहा है—

घटना उस दिन की है, जिस दिन नेहरू जी का देहान्त हुआ था । तेजी बच्चन, जो नेहरू परिवार की नजदीक थीं, उन्हें फोन करके बुलाया गया । वे पहुँचीं तो असली बात पता चली । नेहरू जी का शव उनके बेडरूम में ही था । अभी उस पर चादर नहीं डाली गयी थी ।

थोड़ी देर बाद इन्दिरा जी वहाँ आयीं और बोलीं—'तेजी, पश्चिम बंगाल की गवर्नर पद्मजा नायडू आने वाली हैं । देखना कोई डॉक्टर उस वक्त रहे, क्योंकि शायद वह पापू (इन्दिरा जी पिता को पापू कहा करती थीं) की मृत्यु बर्दाश्त न कर सकें । कहीं बेहोश न हो जाएँ ।'

तेजी बच्चन इस घटना पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहती हैं—

'मैं अपने भीतर ही भीतर सोच रही थी कि धन्य है यह औरत । इस संकट के समय भी इसको दूसरों का ध्यान रहा । जिस औरत का पति पहले ही मर चुका हो, जिनके दो छोटे-छोटे बच्चे हों, जिसके पिता की मृत्यु हो गई हो, मेरा ख्याल है कि इस औरत के पैरों के नीचे की धरती पहले ही निकल गई थी । उसका भविष्य क्या था ? कुछ नहीं । बिलकुल ही अन्धकार । लेकिन, इतने पर भी उसे दूसरों का कितना ध्यान था । कितनी बड़ी बात थी यह ।'

श्री के० करुणाकरन ने इन्दिरा जी के इसी गुण का एक प्रसंग बतलाया है, जो इस प्रकार है—

कड़कड़ाती सर्दी की एक सुबह थी । नई दिल्ली स्थित प्रधानमंत्री निवास में कांग्रेस (ई०) कार्यसमिति की बैठक चल रही थी । सर्दी के मारे सब परेशान थे, लेकिन बैठक आवश्यक थी, इसलिए जारी थी ।

इन्दिरा गाँधी की आदत थी कि वह बैठक में एक बार बैठने के बाद उठती नहीं थीं । उस दिन अपने स्वभाव के विपरीत श्रीमती इन्दिरा गाँधी बैठक के बीच में ही उठकर भीतर गयीं । बैठक में उपस्थित लोग इस एकदम अप्रत्याशित व नई बात को देखकर हैरान हो गए व उनके आने की प्रतीक्षा करने लगे ।

कुछ ही क्षण बाद श्रीमती गाँधी हाथ में एक शाल लिए लौटीं । उन्होंने वह शाल श्री के० करुणाकरन को ओढ़ा दिया । वस्तुत: करुणाकरन अपेक्षाकृत गर्म क्षेत्र केरल से आने के कारण गर्म कपड़ों के अभाव में ठिठुर रहे थे । इन्दिरा जी की नजरों से यह छुप न सका । कितना ख्याल रखती थीं वे अपने इर्द-गिर्द उपस्थित सब लोगों का ।

●

(पृष्ठ 36 का शेष)

श्रीमती इन्दिरा गांधी को इन्दिरा गांधी के नाम से ही जानना पर्याप्त नहीं है । वह भारत की ऐसी महिला थीं जिनको अनेकों नाम उपहार स्वरूप मिले हैं । वे बीसवीं सदी की नारी शक्ति का ऐसा प्रतीक बन चुकी थीं (अपने जीवन काल में ही) कि वर्षों तक देश-विदेश की नारियों के मानस पटल पर वे रहेंगी और प्रेरित करती रहेंगी । उनके बारे में कुछ प्रसिद्ध तथ्य इस प्रकार हैं :—

1— अमेरिका के हेनरी किसिंगर तथा भूतपूर्व राष्ट्रपति निक्सन ने श्रीमती गांधी को उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व से प्रभावित होकर 'दैट आयरन लेडी' अर्थात् 'लौह-नारी' का सम्मान दिया था ।

2— पिता जवाहर लाल तथा मां कमला ने तो 'प्रियदर्शिनी' तथा प्यार से 'इन्दु' ही नाम दिया था । उर्दू के एक कवि ने उन्हें 'गुलाब की बेटी' का नाम दिया ।

3— फिलिस्तीनी नेता यासर अराफात तथा क्यूबा के राष्ट्रपति फिडरल कास्त्रो ने श्रीमती गांधी को 'हमारी प्यारी बहन' कहा था ।

4— चिकमंगलूर से जब वह लोकसभा चुनाव में विजेता घोषित हुईं तो वहां (दक्षिण भारत के लोगों ने) उन्हें 'इन्दराम्मां' अथवा 'नन्ही इन्दिरा' का नाम दिया गया था ।

5— पर्यावरण सुरक्षा संसार ने उन्हें 'महान संरक्षिका' नाम दिया था

6— विश्व की महान महिलाओं ने उन्हें 'बीसवीं शताब्दी की महानतम नारी' का नाम दिया था ।

अपने देश तथा पूरी मानवता की सेवा; ज्ञान, विज्ञान, साहित्य तथा कला की सेवा आदि के माध्यम से इन्दिरा जी ने संपूर्ण विश्व को यह जता दिया कि भारतीय नारी क्या नहीं कर सकती । ममता, उदारता, सहनशीलता के साथ सीता और दुर्गा की तरह सामाजिक तथा सैनिक आक्रमणों का भी डटकर सामना करने वाली इन्दिरा गांधी का जन्म दिवस पूरे देश में 'महिला दिवस' के रूप में मनाया जाता है ।

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

गुजरात के लोक-गीतों में लोरियाँ

—गोपालदास नागर

लोरियां गाने का प्रारम्भ कब से हुआ यह बतलाना कठिन है, लेकिन यह सत्य है कि लोरियां किसी भी देश तथा जाति के साहित्य की शोभा एवं महत्व बढ़ाती हैं। संसार के सभी देशों की माताएं लोरियां गाती हैं, चाहे वे पढ़ी-लिखी सुसंकृत हों या बे-पढ़ी-लिखी आदिवासी।

एक दिन जब प्रकृति यह घोषणा करती है कि स्त्री के गर्भ में शिशु की रचना आरम्भ हो गयी है तो उसका हृदय वात्सल्य रस से भर उठता है। एक अपूर्व आनन्द की लहर दौड़ जाती है और स्वाभाविक रूप से उसके स्तनों में दूध आ जाता है। उसी वात्सल्य-रस से ओत-प्रोत होकर माता का हृदय गाने लगता है और उसके हृदय से उस समय जो गीत निकलते हैं, उसे लोरियों की संज्ञा दी गयी है।

माताएं लोरियाँ गा-गाकर अपने बालकों में संस्कार डालती हैं और गाते-गाते उनका हृदय वात्सल्य-रस से भर उठता है। कुछ उदाहरण यहां दिए जा रहे हैं, जो सम्पूर्ण गुजरात में गाये जाते हैं।

बालकों को लोरियां अत्यधिक प्रिय हैं। माताएं उन्हें लोरियाँ गा-गाकर सुलाती हैं, गा-गाकर दूध पिलाती हैं और गा-गाकर ही स्नान भी कराती हैं। एक माता अपने बालक को गाकर सुना रही है :—

हालो तो घणों वा' लो, रे भाई ने,
रमवा ने रमकड़ा आलो···हा लो !
भाई तो मारो डाह्यो रे भाई तूं,
पाटले बेसी ने नाह्यो ! हा···लो!
पाटलो गयो खसी, भाई मारो,
उढ्यो छे रे हसी !··हा·लो !

(मेरे बेटे को लोरियां बहुत अच्छी लगती हैं। इसे खेलने के लिए खिलौने दूंगी। यह बहुत चतुर है। पीढ़े पर बैठकर इसने स्नान किया है। पीढ़ा पानी के कारण थोड़ा-सा खिसका तो मेरा बेटा खुश होकर हँस उठा।)

इस तरह की लोरियां गाकर माता अपना वात्सल्य लुटाती है और संस्कार डालने की शुरुआत करती है। माता का मुलायम हाथ रह-रहकर पुत्र की पीठ सहलाता है, अंग-अंग सहलाता है। इस प्रेम भरे स्पर्श में वह महान सुख मानती है, उसके रूप में अपने पति की बाल्यावस्था की तस्वीर देखती है। उसके स्पर्श में पति के स्पर्श का अनुभव करती है। उसे अपनी छाती से लिपटाते हुए उनके मातृ-हृदय को कितना सुख-संतोष होता है।

बालक के लिए मां में कितनी त्याग की भावना होती है? वह बालक के जरा भी अस्वस्थ होने पर तुरन्त उसकी चिकित्सा करती है, भूखी रहती है, जागरण करती है, गीले में सो जाती है। वह बालक को उबटन लगाकर नहलाती-धुलाती है, आंखों में काजल लगाती है और बालक को अपनी गोद में लेती है। बालक माता की गोद में ही सो जाता है। सो जाने पर वह उसे झूले में सुलाकर घर का काम करने लग जाती है। काम करती जाती है और गीत गाती जाती है। बीच-बीच में सो रहे बालक का मुखड़ा भी देखती रहती है। कभी उसका झूला रुक जाता है और बालक जग जाता है तो घर में चलती-चक्की का सुमधुर स्वर सुनने लगता है। माता झूले की डोर पांव के अंगूठे से बांधकर झूला डुलाती रहती है और चक्की के स्वर में स्वर मिलाती हुई लोरियों की पंक्तियां दुहराती है। बालक पुनः नींद में खो जाता है।

कपड़े धोने जाने से पहले उसे देखकर जाती है। धोकर लौटती है तब देखती है। कुएं पर पानी भरने जाती है तब झुला झुलाकर जाती है और आने पर पुनः झुला देती है। खाना बनाती है और बीच-बीच में आकर देख लेती है। कहती है :—

हालती-चालती एक हींचकड़ों नाखुंरे,
हो हालेरा गाऊं रे नाना बात ना······।

(अर्थात चलते-फिरते एक हिचकोला दे देती हूं और इसे लोरियां गाकर सुनाती रहती हूं।)

और यदि इस तरह भी बालक को नींद नहीं आती तो झूले के पास बैठकर डोरी खींचती है और लोरियां गाती है। माता का प्रथम प्रेम झरना साधारण लेकिन कोमल एवं मधुर सुर में लोरियों के काव्य-संगीत द्वारा बहने लगता है :—

भाई तो मारो डाह्यो रे भाई तुं,
पाटले बेसी ने नाह्यो ! हा···लो !
पाटलो गयो ले' रे भाई तुं,
दौड़तो आवियो घेरे ! हा···लो !
भाई तो मारो हीरो रे भाई तुं,
लाड़-लड़ावे भाई नो वीरो ! हा...लो !

और फिर :—

मोसाला मा मामी धुतारी
झबला-टोपी ले से उतारी ! हा···लो !

और उधर पड़ोस के गांव की माता अपनी पुत्री को झूले में डाल कर निंदिया रानी को सम्बोधित कर गाती है :—

एक तो घड़ी न समे बेन मारी,
पारणिया मा रमे !

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

सूता मुखड़ी न भावें बेन तने,
भूखे नींदरड़ी न आवे !
नींदरड़ी तूं आड़ी ने छे भोली,
पहेली आवाजे झोली··
मारी बेनड़ी ! सुईजा !
सूवे सूड़ा ने सूवे पंखी,
एक ना सूवे बेन राजवंशी !

बालक के समान ही बालिका भी प्यारी है। फिर बालिका तो राजवंशी ! उसे सुलाने के लिए निद्रादेवी को जल्दी आमंत्रित करती है, लेकिन नींद जल्दी नहीं आती ! तब माता पुत्री को समझाती है कि आकाश में उड़ते पक्षी भी सो जाते हैं, तो तुम क्यों नहीं सो जाती ? बालकों की प्रकृति के अनुरूप कल्पना इस गीत में है।

बालकों को पक्षी बहुत प्यारे लगते हैं और ये पक्षी भी सोकर प्रकृति के नियम का पालन करते हैं। यह बात बालकों के कोमल हृदय में बैठाती है। उस राजवंशी पक्षी को सुलाने के लिए अत्यन्त मधुर स्वर में माँ दूसरा गीत ललकारती है :—

हालरडुं वा' लु रे,
बेन तारू पारणियुं' घुमावुं !
पारणियुं परवालुं,
बेन तारू घोडियुं घुघरियालुं !

यह है लोरियों की सुन्दर शब्द-रचना ! प्रत्येक शब्द बालक को मोह ले ऐसे स्निग्ध एवं कर्ण प्रिय हैं। माता के कंठ से झरता मधुर और प्रिय संगीत रोते बालक की 'ऊँ-ऊँ-ऊँ' में मिलकर भोली-भाली निद्रा को तुरन्त ही उसकी आंखों में खींच लाता है। इस गीत की लय और झूले के हिलने का स्वर और ताल, माता का प्रेम भरा कंठ और बालक का 'ऊँ-ऊँ-ऊँ' इन सबसे एक नाद, एक स्वर उत्पन्न होता है और बालक के कोमल मन पर उनका गहरा असर डाल उसकी नाजुक आंखो में नींद ला देता है।

फिर भी मां लोरियां गाती रहती है, क्योंकि उसे तो पुत्री के प्रति भी प्रेम प्रवाहित करना ही है, बालक की महिमा गानी ही है :—

हालो करी गाऊँ रे,
बेन तने गाय नां दुधड़ा पाऊं ! हा···लो !
एक तो घड़ी समे रे,
बेन मारी पारणिया मा रमे।
बेन मारी अखारी बेन तारी,
माड़ी घड़ी न परवारी ! हालो ··· ···
झबला नी फरते फूल,
बेन तारा झबला ना मोंघा मूल !
झबला नी फरते मोती,
बेन तारी माड़ी मुखड़ा जोती ! हा···लो···

पुत्री के मुख में मां सारे संसार का सौंदर्य देखती है अपना ही प्रतिबिम्ब उस छोटे मुखड़े में दिखता है न !

●

लघुकथा

क्षोभ

—शिशिर विक्रांत

कई दिनों से वह क्षोभ में झुलस रहा था–'अपने देश में यह जातिवाद का झमेला कहां से आ गया ! स्मृति उसे बहुत पसंद है। उसकी रग-रग में बस चुकी है। वह पास हो तो कोई अमूल्य निधि मिलने का अहसास होता है। दूर हो तो सभी कुछ फीका और निस्सार लगने लगता है। जाने क्यों, अब तो ऐसा लगता है कि स्मृति के बिना वह जी नहीं सकेगा।

कई बार सोच चुका है, स्मृति के आगे वह, उससे विवाह करने की अपनी हार्दिक कोमलतम इच्छा व्यक्त कर दे, पर साहस नहीं जुटा पाता। उसका अपना संकोच और स्मृति का गैर जाति का होना–ये दो कारण उसकी जबान बन्द कर, उसे लगातार खोखला-सा करते चले जा रहे हैं। स्मृति तो मान जाएगी, पर उसके माता-पिता कैसे भी मानेंगे–वह भली प्रकार जानता है। वह उनकी जाति का जो नहीं है। वे कायस्थ···और वह वैश्य।'

न रहा गया तो एक दिन हिम्मत करके उसने एक पत्र स्मृति के पास एक पुस्तक में रख कर पहुँचा ही दिया। पुस्तक की वापसी के साथ अगले दिन उत्तरस्वरूप स्मृति का पत्र पाकर उसे बहुत खुशी हुई, पर पत्र खोलने तक ही। लिखा था–'मेरे लिए इससे बड़ी हरगिज बड़ी खुशी और कोई नहीं होती, पर दूसरी जाति की वजह से मम्मी-डैडी नहीं मानेंगे। इसलिए प्लीज, शादी का विचार छोड़ दो।'

पूर्वानुमान के बावजूद उसे गहरी निराशा हुई। लगा–स्मृति के पत्र के मजमून ने उससे, उसका संसार छीन लिया हो।

वह भगवान के चित्र के सामने जाकर खड़ा हो गया। हाथ जोड़कर बोला–"भगवान, मुझे अगला जन्म वहां देना, जहां जातिवाद का नाम भी न हो। अगर यह तुम्हारे वश के बाहर हो और इसी देश में पैदा करो तो तब तक मनुष्य-योनि मत देना, जब तक इस देश से जाति का भेद समाप्त न हो जाए। तब तक मैं किसी भी दूसरी योनि में रहना बेहतर समझूंगा।"

अगली सुबह उस भारतीय युवक का शव, उसके कमरे में पंखे से लटका हुआ मिला। चेहरे पर शिकायत का कोई भी चिन्ह नहीं था।

●

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

राजघाट पुल ने सौ वर्ष पूरे किये

—वशिष्ठनारायण सिंह

गंगा की तीव्रधारा को सहता हुआ काशी का राजघाट पुल 1 अक्टूबर 1987 को अपने जीवन के सौ वर्ष पूरे कर रहा है। 1947 ई० के पूर्व 'डफरिन' तथा बाद में 'मालवीय ब्रिज' के नाम से विख्यात इस पुल की आत्मा भारत के इतिहास में कैद है। समय के उतार-चढ़ाव तथा बदलते हुए परिवेश को देखा है इस पुल ने।

हालांकि 'मालवीय ब्रिज' का निर्माण तत्कालीन समय में अवध-रुहेलखण्ड और ईस्ट इण्डिया रेलवे को मिलाने के लिए किया गया। लेकिन यह हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी सड़क 'ग्रैन्ड ट्रंक रोड' को पूरब से पश्चिम की ओर जोड़ने का भी काम करता है। लगभग 5 वर्षों में निर्मित यह पुल 1 अक्टूबर 1887 को चालू किया गया। उस समय इस पर एक ही रास्ता था। ट्रेन और आदमियों को उसी से होकर गुजरना पड़ता था। जब ट्रेन आती तो दोनों ओर के फाटक बन्द कर दिए ज़ाते तथा आवागमन रुक जाता। 16 दिसम्बर 1887 को राजघाट पुल का नाम तत्कालीन गवर्नर जनरल और वाइसराय 'डफरिन' के नाम से रखा गया। उसके बाद यह 'डफरिन ब्रिज' के नाम से विख्यात हुआ। नामकरण के अवसर पर हुए भव्य समारोह में तत्कालीन गवर्नर जनरल डफरिन के अतिरिक्त काशी के महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह, पश्चिमोत्तर प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर आकलैण्ड, बनारस के कमिश्नर और गवर्नर जनरल के एजेण्ट सहित अनेक उच्च अधिकारी मौजूद थे।

अब तक मिले अभिलेखों के अनुसार पुल का नक्शा बाथो और हेडरस्टेट नामक दो इंजिनियरों ने महीनों तक अथक परिश्रम करके तैयार किया था। बाथो ने फाउण्डेशन की डिजाइन और हेडरस्टेड ने अन्य भागों के नक्शे बनाए थे। पुल के महत्व को देखते हुए 1947 में अगल-बगल दो रेल लाइनों का निर्माण किया गया तथा मोटर गाड़ियों के लिए उसके ऊपर से अलग रास्ता बनाया गया। हालांकि पुर्ननिर्माण ब्रिटिश काल से ही शुरू हो गया था, लेकिन देश को आजाद होते-होते यह सम्पन्न हुआ। आजादी के बाद संयुक्त प्रांत के प्रधान पं० गोविन्द वल्लभ पंत थे। इनकी उपस्थिति में 5 दिसम्बर 1947 को महामना पं० मदनमोहन मालवीय के नाम पर इसका नाम रखा गया 'मालवीय ब्रिज।' इस अवसर पर रेलवे के मुख्य आयुक्त श्री के० सी० बाखले, वाइस चांसलर राधाकृष्णन सहित अनेक लोग उपस्थित थे। तबसे यह मालवीय पुल कहा जाने लगा। 'मालवीय-ब्रिज' नाम रखने का कारण यह था कि उस समय महामना पं० मदनमोहन मालवीय की मृत्यु हुई थी, जो भारतवासियों के हृदय को दग्ध कर रही थी। ज्वाला को शांत करने लिए पुल का नामकरण महामना मालवीय के नाम पर किया गया।

पुराने अभिलेखों के अनुसार पुल निर्माण के प्रारम्भिक समय अर्थात् 1887 में अनुमानतः 60 लाख रुपये से भी अधिक खर्च हुए। इससे यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि इसका निर्माण यदि आज किया जाय तो क्या संभव है? इतना ही नहीं पुल में 9 छोटे और 7 बड़े अर्थात् कुल 16 खंभे हैं, जिन पर पुल टिका हुआ है। छोटे खंभे 114 फिट तथा बड़े 365 फिट लम्बे हैं। बड़े खंभे 65 फिट लम्बे, 28 फिट चौड़े और उस समय 72 फिट 7 इन्च पानी से ऊँचे थे। पहले सभी बड़े खंभों को 140 फिट जमीन में गलाने का इरादा किया गया था, लेकिन राजघाट किले की ओर की धरती कुछ कड़ी होने के कारण पहले 3 खंभे तो 47 फिट से 70 फिट तक गलाए गये, चौथा और पाँचवाँ 140 फिट तक। छठवें और सातवें 121 फिट से 132 तक जमीन के अन्दर हैं। छोटे खंभे 25 फिट से 114 फिट तक गले हुए हैं। जो सबसे बड़े खंभे हैं, एक-एक में अनुमानतः 18 हजार टन अर्थात 4,90,500 मन मसाला लगा है। जिस इस्पात के गर्डर से यह पुल पाटा गया है वह सब झझरीदार हैं तथा वह तौल में 1,74,400 मन हैं। हालांकि सड़क बन जाने से उसके ऊपरी हिस्से की लम्बाई काफी अधिक है, लेकिन प्रारम्भिक समय अर्थात् इस समय जिस रास्ते से ट्रेन गुजरती है, उसकी लम्बाई एक सिरे दूसरे सिरे तक 3,507 फिट इंच है। सबसे गहरे खंभों की पेंदी से लोहे की चोटी तक यह अनुमानतः 252 फिट ऊँचा है।

इस देश के मशहूर तथा अनोखे पुल के बारे में विशेषज्ञों का कहना है कि यह अपने बुजुर्गी के समय से गुजर रहा है। अर्थात् इस पुल ने अपनी उम्र पूरी कर ली है। लेकिन इसके साथ-साथ उनका यह भी कहना है कि अगर इसकी जगह दूसरा पुल बनाया जाय तो कहीं वह इससे कमजोर ही होगा। इसलिए बुजुर्गी में यह पुल जवानी का कार्य कर रहा है। ●

(पृष्ठ 35 का शेष)

दूसरी घटना सेवाग्राम की है। यह संस्मरण ठाकुर श्रीनाथ सिंह से सम्बन्धित है। उन्होंने लिखा है—

'एक दिन की बात है। मैं गाँधी जी से मिलने सेवाग्राम गया। गाँधीजी सेवाग्राम में अपनी बैठक करने वाली कुटी में थे। अनेकों लोग बापू से मिलने के लिए आये हुये थे और कई लोग प्रतीक्षारत थे। मैं भी वहाँ बरामदे में खड़ा हो गया कि और लोग हटें, तो अन्दर जाकर गांधी जी से मिलूं।'

गर्मी के दिन थे। मैंने देखा कि थोड़ी दूर पर माता कस्तूरबा एक बाल्टी से कुएँ से पानी खींच रही हैं। मैं दौड़कर उनके पास गया और बोला—'माताजी, आप यह क्या कर रही हैं? लाइए मैं पानी खींच दूं।'

'न, न, दूर ही रहना। बापू जानेंगे, तो बहुत नाराज होंगे। तुम पानी मत खींचो।'—बा ने कहा।

'क्यों भला? इसमें क्या बुराई है?' मैंने पूछा।

वे कहने लगीं—'बापू कहते हैं कि इस गाँव की सभी स्त्रियाँ अपने घर के काम के लिए पानी खींच कर लाती हैं। तुम क्यों नहीं ला सकतीं? सो, उन्होंने मुझे यह काम बता दिया है।'

मैं बा की बात सुनकर बापू की महानता के आगे झुक गया। ●

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

नये युग के सूत्रधार : स्वामी दयानन्द सरस्वती

—डॉ० नरेश

शताब्दियों की दासता से जर्जरित भारतीय समाज के आत्म-सम्मान-विहीन जीवन को किसी ऐसे उद्घोष की आवश्यकता थी, जिसकी ध्वनि, उसकी धमनियों में बह रहे रक्त के साथ संचरित होकर, उसकी चेतना को सुषुप्तावस्था के अन्धकार से निकालकर, जागृति की नवल किरणों के प्रकाश से परिचित करा सके; किसी ऐसी आवाज की, जो उसे भीतर से झिंझोड़ डाले ताकि उसका शरीर, सदियों की गुलामी के जुए का बोझ तीव्रता के साथ अनुभव कर सके। सुषुप्तावस्था के इस अन्धकार में उसका उज्ज्वल गौरवमय अतीत विलुप्त हो चुका था। दासताग्रस्त भारतीय अपनी सभ्यता, संस्कृति एवं अध्यात्म की धरोहर के प्रति उदासीन होकर, पाश्चात्य भौतिक तथ्यों को ही सर्वोपरि समझने लगे थे। इस प्रवृत्ति से, भारतीय समाज में, जो 'समझौतावाद' विकसित हुआ, उसके भयंकर दुष्परिणामों से अपरिचित तथा दूरदर्शिता से वंचित भारतीयों के लिए आवश्यकता थी एक ऐसे आह्वान की, जो ओजपूर्ण होते हुए भी कर्कश न हो क्योंकि उसे रोग के उपचार से कहीं अधिक जरूरत थी रोग के निदान की, और यह निदान एक भीषण क्रूर सत्य था। एक ऐसा सत्य, जिसकी गरलमयी कटुता को पीना और पचाना सरल नहीं था।

समय की इस महती आवश्यकता को अनेक मनीषियों ने अनुभव किया तथा अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार उन्होंने दासता के इस भीषण रोग के निदान तथा उपचार का उपक्रम भी किया। इनमें से प्रमुख नाम हैं—राजा राममोहन राय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, महादेव गोविन्द रानाडे, स्वामी दयानन्द, बालगंगाधर तिलक तथा अरविन्द। अपने-अपने कर्म-क्षेत्र में ये मनीषी उस युग के सूत्रधार सिद्ध होते हैं, जिसे भारतीय इतिहास में 'नवजागरण का युग' कहा जा सकता है। प्रस्तुत लेख में, हम जिस युग-पुरुष के संदर्भ में भारतीय समाज के नवजागरण का अवलोकन करेंगे, वे हैं—स्वामी दयानन्द।

पैनी दृष्टि वाले स्वामी दयानन्द की सिद्धहस्तता ने रोगग्रस्त भारतीय समाज की नाड़ी-परीक्षा की और समझ लिया कि पुनर्जागरण के लिए एक ऐसे आन्दोलन की आवश्यकता है, जो धार्मिक-सांस्कृतिक-आन्दोलन हो। अपने इस निर्णय को क्रियान्वित करते हुए, दयानन्द ने सन् 1867 में, हरिद्वार के स्थान पर, 'पाखण्ड-खण्डिनी ध्वजा' के नीचे 'आर्य-समाज' की स्थापना की और जर्जरित भारतीय समाज को तीक्ष्ण प्रखर स्वर से पुनर्जीवन का आह्वान दिया। स्वामी दयानन्द ने गरिमापूर्ण अतीत में से भारत की आत्मा को खोज निकाला और उन्हें निश्चय हो गया कि विस्मृत अतीत के पुनर्जीवन में ही भारतीय समाज का कल्याण एवं उत्थान निहित है। इस आशय से उन्होंने जो उद्घोष किया, वह भारत की अस्मिता का प्राणपोषक उद्घोष था कि 'आर्य विशिष्ट जाति है, वेद विशिष्ट ग्रन्थ हैं, आर्यावर्त विशिष्ट भूमि है।'

आर्यों को उनके 'आर्य' होने का अनुभव कराना ही काफी नहीं था बल्कि यह भी जरूरी था कि उन्हें अनेक प्रकार के मत-मतान्तरों, सम्प्रदायों, मार्गों तथा विभिन्न समुदायों से निकालकर एक सूत्र में पिरोया जाये ताकि एक ऐसी पुष्पमाला का निर्माण हो, जो विशुद्ध भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की महक दे। इसके लिए आर्यों में जातिगत गरिमा जागृत करना आवश्यक था। अतः स्वामी दयानन्द ने आर्यों को विशिष्ट जाति के रूप में स्थापित करने में जिस दूरदर्शिता से काम लिया, उसका उद्देश्य वर्तमान पीढ़ियों को, अपने पुरखों के जाज्वल्यमान अतीत के प्रकाश से प्रदीप्त करके 'विशिष्टता' का अनुभव कराना था। उनके समुदायों-सम्प्रदाओं में विभाजित समाज को, आन्तरिक विश्रृंखलन से उबारकर, विदेशी सांस्कृतिक आक्रमणों से सुरक्षा प्रदान करना, इस विचार-धारा का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग था। इसके लिए आवश्यक था कि 'विशिष्ट जाति' की अपनी 'विशिष्ट किताब' हो। अतः अन्तर्मन से वेदों को ज्ञान का सर्वोत्तम भण्डार मानने वाले स्वामी दयानन्द ने वेद को 'विशिष्ट' रूप प्रदान करके, उन्हें कुरान तथा बाइबिल के सदृश्य, आर्य-जाति के 'विशिष्ट ग्रन्थ' के रूप में घोषित कर दिया। 'जाति' तथा 'किताब'—दो की स्थापना से एक तीसरी स्थापना सहज ही उद्भूत हो उठी कि विशिष्ट ग्रन्थ वाली विशिष्ट जाति का अपना विशिष्ट प्रदेश भी हो। अतः 'आर्यावर्त आर्यों के लिए' का उद्घोष करके स्वामी दयानन्द ने अपनी परिकल्पना में राष्ट्रीयता के इस महत्वपूर्ण उपकरण का समावेश भी कर लिया। अब उनके सामने भारत का मानचित्र स्पष्ट था कि आर्यावर्त (भारत) आर्यों का प्रदेश है, उन आर्यों का, जो एक 'जाति' हैं तथा जिनका जीवन-दर्शन वेदों की ऋचाएँ निर्धारित करती हैं।

स्वामी दयानन्द की इस इस परिकल्पना के जन-मानस में उतरने से ही भारतीय इतिहास में एक नूतन-युग का सूत्रपात होता है। 'आर्यावर्त आर्यों के लिए' का अर्थ स्पष्ट था कि जो आर्य किसी सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक विवशता के कारण आर्यों के समाज से विलग हो गये हैं, उन्हें फिर से आर्यों के समाज में लौटने का निमन्त्रण दिया जाए तथा जो आर्य अपने ही समाज में रहते हुए, वेदों की मान्यताओं से विमुख हो गये हैं, उन्हें वेदों की ओर प्रेरणा दी जाय। इस विचारधारा के पूर्वार्द्ध ने 'शुद्धि-आन्दोलन' का रूप धारण किया तथा उत्तरार्द्ध ने 'आर्य समाज-आन्दोलन' का। इन दोनों आन्दोलनों को यद्यपि पूर्णरूपेण सफलता प्राप्त नहीं हो सकी परन्तु इनसे जनसाधारण में जिस राष्ट्रीय चेतना का संचार हुआ, वह चेतना हमारी राजनीति की अन्तर्दृष्टि सिद्ध हुई। 'आर्यावर्त आर्यों के लिए' का जो उद्घोष स्वामी दयानन्द ने किया था, वही उद्घोष 'भारतवर्ष भारतीयों के लिए' का रूप धारण करके, सन् 1906 के कांग्रेस

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

अधिवेशन (कलकत्ता) में प्रकट हुआ और 1929 के कांग्रेस अधिवेशन (लाहौर) तक स्पष्ट होते-होते यह उद्घोष 'भारत-छोड़ो' आन्दोलन का रूप धारण कर गया।

यह कहना तो अतिशयोक्ति होगा कि भारतीय समाज के पुनर्जागरण के साथ राष्ट्रीयता की जिस भावना का उदय होता है और परिणाम-स्वरूप राष्ट्रीय चेतना के जिस युग का आरम्भ होता है, उसका सूत्रपात स्वामी दयानन्द ने किया था, परन्तु इस तथ्य को किसी प्रकार भी नकारा नहीं जा सकता कि इस युग में, भारतीयों को 'स्वराज' के प्रति जागरूक करने का सर्वप्रथम प्रयास दयानन्द ने ही किया था। स्वाधीनता-आन्दोलन की पृष्ठपोषक संस्थाएँ यथा : ब्रह्म-समाज, प्रार्थना-समाज, यहां तक कि अपने शैशवकाल तक कांग्रेस भी 'स्वराज' की मांग को लेकर कर्मशील नहीं थीं अपितु उनका आशय 'सुराज' प्राप्ति था। 1906 तक तो कांग्रेस 'औपनिवेशिक स्वशासन' की मांग करती रही है, 'पूर्ण-स्वराज' 1929 में कांग्रेस का ध्येय बना है। इसके विपरीत, स्वामी दयानन्द ने 1874 में ही, अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में, आर्यावर्त के लिए 'स्वराज' की मांग कर ली थी। दयानन्द भारत पर विदेशी शासन से खिन्न थे, अतः उन्होंने लिखा कि, 'आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतंत्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है, सो भी विदेशियों से पदाक्रान्त हो रहा है।' 'स्वराज' संबन्धी अपनी मान्यता को और अधिक स्पष्ट करते हुए दयानन्द आगे लिखते हैं कि, 'कोई कितना ही करे, लेकिन जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है।'

यहां यह बात ध्यान में रहनी चाहिए कि दयानन्द का कर्मक्षेत्र राजनीति नहीं, संस्कृति था। उन्होंने भारत को राजनीतिक नेतृत्व प्रदान नहीं किया अपितु सांस्कृतिक नेतृत्व प्रदान किया था। यह भारत की संस्कृति का अपना कमाल है कि जब-जब भी भारतीयों के मन में अपनी संस्कृति के प्रति मोह जागृत हुआ, जब-जब भी वे अपनी सांस्कृतिक धरोहर के प्रति जागरूक हुए हैं, जब-जब भी उन्हें अपनी सांस्कृतिक विशिष्टताओं के ह्रास का अनुभव हुआ है, तब-तब उनके भीतर राष्ट्रीयता की भावना बलवती हुई है। इसका कारण सम्भवतः भारतीय राष्ट्रवाद की अवधारणा में निहित 'राष्ट्रधर्म' है। भारतीयों ने हमेशा ही स्वदेश-प्रेम को धर्म के रूप में स्वीकार किया है। भौतिकता पर आधारित राष्ट्रीयता या राष्ट्रप्रेम की पाश्चात्य अवधारणा उन्हें कभी अभीष्ट नहीं रही है। फलतः स्वामी दयानन्द ने जब पलायनांध भारतीय समाज को संस्कृति-चक्षु प्रदान करके, उसमें एक नई चेतना, एक नूतन स्फूर्ति का बीजारोपण किया तो उसका अंकुरण अतीत के गरिमामय सांस्कृतिक चरमोत्कर्ष के रूप में हुआ और आर्यावर्त के निवासियों को पहली बार यह अनुभव हुआ कि वे कौन थे और आज क्या होकर रह गये है। वर्तमान के प्रति खिन्नता के भाव का उदय होना तथा अतीत को लौटा लाने की लालसा का जागना ही दयानन्द-कालीन भारतीय समाज की सबसे बड़ी आवश्यकता थी। वस्तुस्थिति को हृदयंगम करके, भारतीय जनता सात दशकों की अल्पावधि में ही, विदेशी शासन का जुआ अपने गले से उतार फेंकने में समर्थ तथा सफल हो गयी, यह एक ऐतिहासिक सत्य है। इस सत्य की प्राप्ति में अनेक समाज-सुधारकों, साहित्यकारों, मनीषियों, राजनीतिक कार्यकर्ताओं अथवा मातृभूमि पर बलिदान होने वाले अमर शहीदों के योगदान को श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जाता है। इनमें कतिपय ऐसे नाम सम्मिलित है जिनका प्रेरणास्रोत स्वामी दयानन्द ही थे। उदाहरण के लिए लाला लाजपत राय, स्वामी श्रद्धानन्द, डॉ० सत्यपाल, सरदार अजीत सिंह, मदनलाल ढींगरा तथा शहीद भगतसिंह के नामों का पुण्य स्मरण किया जा सकता है।

इस नवीन चेतना तथा नवजागरण का मेरुदण्ड या भारत का बहुसंख्यक हिन्दू समाज। 'आर्यावर्त आर्यों के लिए' का उद्घोष करने वाले स्वामी दयानन्द के मन में उन अनेकानेक लोगों के प्रति अनुदारता न थी, जो अ-हिन्दू थे, परन्तु निश्चित ही उन्हें उन लोगों से गहरी सहानुभूति थी, जो किसी राजनीतिक-आर्थिक विवशता के कारण हिन्दू धर्म से विमुख होकर, कोई दूसरा धर्म स्वीकार कर चुके थे। स्वामी दयानन्द ने भारत भूमि पर जन्म लेने वाले मनुष्यों की संस्कारगत प्रतिबद्धता को पकड़ लिया था तथा वे जानते थे कि यदि अ-हिन्दुओं के भीतर सुषुप्त संस्कार को जागृत कर दिया जाए तो पुनः अपने धर्म की ओर लौट सकते हैं। यह स्थिति उस रूप में और अधिक स्पष्ट हो जाती है, जब धर्म परिवर्तन के लिए विवश पीढ़ी समाप्त हो चुकी हो और उसके उत्तराधिकारी, चलाचली में, पूर्वजों द्वारा परिवर्तित धर्म को अपनाये चले जा रहे हों। इस्लाम के सन्दर्भ में, कुछ ऐसी ही स्थिति दयानन्द के समय में विद्यमान थी परन्तु ईसाई धर्म के सन्दर्भ में यह स्थिति अधिकतर वर्तमान पीढ़ी तक ही सीमित थी। यहां भी स्वामी दयानन्द का दृष्टिकोण, 'समझौतावाद' के सभी बन्धनों से मुक्त, एक विशिष्ट कार्य-प्रणाली को लेकर चलता है। वे अ-हिन्दुओं के भारत से निष्कासन की बात नहीं करते अपितु उन्हें 'शुद्ध' करके, अपने समाज में लौटा लाने का आह्वान करते हैं। बिछुड़े हुए भाइयों को प्रेमपूर्वक घर लिवा लाने और उन्हें गले से लगाकर अतीत की कटुता को विस्मृत कर देने में बड़े भाई की महानता है। बहुसंख्यक, हिन्दू-समाज को 'बड़े भाई' का यह कर्तव्य बहुत पहले निभा लेना चाहिए था। परन्तु यहां तो स्थिति ही विपरीत थी। समन्वयवाद, समझौतावाद, तुष्टिकरण और इन सबके प्रति गर्वमय रुझान प्रकट करना हिन्दू-समाज की प्रकृति बन चुका था और यह 'हिपांक्रेसी' समाज की रगों में प्रवाहित रक्त में घुल चुकी थी। परिणाम यह हुआ कि दयानन्द के इस उद्घोष का प्रतिवाद भी हुआ और प्रतिक्रिया भी। प्रतिवाद और प्रतिक्रिया का स्वर तीक्ष्ण था और दयानन्द की आवाज 'अकेली आवाज' थी।

मैं, व्यक्तिगत रूप से, भारत के सहिष्णुता, सहनशीलता, त्याग आदि नैसर्गिक गुणों का पक्षधर हूं। अतः मुझे यह अभीष्ट नहीं है कि मैं स्वामी दयानन्द के उपर्युक्त दृष्टिकोण के समर्थन में स्पष्टीकरण या तर्क खोजूं। लेकिन जिस युग का लेखा-जोखा इस समय मेरे सामने है, उसके सन्दर्भ में, युगीन परिस्थितियों में धर्म-निरपेक्षता के नाम पर, इस दृष्टिकोण

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

को सिरे से ही नकार देना भी मैं अनुचित समझता हूं। टकराव चल रहा है, विपरीत विचारधाराएँ प्रकृतिवश टकरा रही हैं, मुसलमान शासक बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन करा चुके हैं, ईशाई शासक मिशनरियों को पूर्ण संरक्षण देकर उनकी पीठ ठोंक रहे हैं-इन परिस्थितियों में यदि कोई निष्ठावान् सांस्कृतिक नेता, अपनी गहरी प्रतिबद्धता के साथ, उक्त विचार-धारा के प्रचार एवं प्रसार में निमग्न होता है तो इसमें न तो आश्चर्य करने की गुंजइश है और न इसको नकारने या इसकी निन्दा करने की। किसी भी दृष्टिकोण या विचारधारा को उसके युग के संदर्भ से काटकर देखना स्वयं मूल्यांकन के प्रति अन्याय करना होता है। अतः मैं स्वामी दयानन्द के इस दृष्टिकोण को युगीन सीमाओं से बाहर लाकर नहीं देखना चाहता।

जिस हिन्दू-समाज को सुधारने का बीड़ा स्वामी दयानन्द ने उठाया था, उसकी दशा निःसन्देह शोचनीय थी। शताब्दियों की दासता से उसकी अस्मिता क्षीण हो चुकी थी तथा यह समाज अपने छोटे-छोटे स्वार्थों की सिद्धि के लिए, प्रत्येक स्थिति से समझौता करके, घिनौनी स्थितियों से भी सुखद अनुभूति का नाटक रचने लगा था। अपनी सांस्कृतिक धरोहर से अनभिज्ञ अपने धर्म के प्रति उदासीन तथा अपनी सभ्यता से विमुख हिन्दू-समाज दयानन्द का कर्मक्षेत्र था। स्वामी दयानन्द इस समाज को एक आदर्श समाज का रूप प्रदान करने के इच्छुक थे। इस समाज की व्यवस्था अधोपतन की चरम सीमाएँ छू रही थी। वर्णाश्रम व्यवस्था के चौथे चरण 'शूद्र' के 'कर्म' के महत्व को अस्वीकार करके, उसके 'जन्म' को ही प्रमुख माना जाने लगा था। अतः वर्णाश्रम का शूद्र भारतीय समाज में 'अछूत' हो गया था। अछूतों के प्रति अन्य तीनों वर्णों का व्यवहार अमानवीयता की हदों को छूने लगा था। स्वामी दयानन्द के लिए चारों वर्णों के लोग 'आर्य' थे, सवर्ण-अवर्ण का भेद उनकी दृष्टि में महत्वहीन था। अतः उनके आर्यसमाज में जाति-वर्ण की भावनाओं के लिए कोई स्थान न था। स्वामी दयानन्द ने वाणी तथा कर्म द्वारा इस चौथे वर्ण के प्रताड़ित, दलित एवं उपेक्षित 'आर्यो' को आत्म-गौरव तथा आत्म-सम्मान के विभूषणों से सुसज्जित करने का प्रयत्न किया। एक नाई ने भोजन बनाया, उसे सभा में बांटा गया और महर्षि दयानन्द ने भी उसे स्वीकार किया।'

भारतीय समाज के जिस महत्वपूर्ण अंग को मध्यकाल ने सर्वाधिक आघात पहुंचाया है, वह है—नारी। वैदिक काल में स्वयंवर द्वारा अपना जीवन संगी चुनने का अधिकार रखने वाली नारी, मध्यकाल में 'ढोर-गँवार' समान होकर ताड़न की अधिकारी हो गई कि उसकी झाईं पड़ने से भुजंग भी अन्धा होने लगा। इसके लिए भारतीय पुरुष-सत्तात्मक समाज की स्वार्थपरक नीति उत्तरदायी ठहरती है। वैदिक विवाह-परम्पराओं में शनैः-शनैः इतने परिवर्तन किये गये कि अन्ततः विवाह-संस्था में ही अमूल परिवर्तन हो गया। विवाह-संस्था में जाति-वर्ण-भेद सर्वोपरि हो गया। दहेज विवाह-संस्था का अविभाज्य अंग हो गया। फलतः नारी को स्वयंवर के स्थान पर जो कुछ दिया गया, वह था अनमेल-विवाह, बाल-विवाह, बहु-विवाह, सती-प्रथा, नगर बधुता और देवदासीत्व। समाज की शोभा मात्र बिस्तर तक सीमित रह गई और बिस्तर से बाहर पर्दा ही उसका सबसे बड़ा आभूषण हो गया। इसका आधार था, नारी का अशिक्षित होना। पुरुष-सत्तात्मक समाज ने अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए यह विधान कर लिया था कि नारी अशिक्षित रहे। स्वामी दयानन्द ने इस बीमारी की जड़ पकड़ ली तथा नारी शिक्षा के प्रचार का बीड़ा उठाया। नारी के शिक्षित होने से उसके भीतर जो स्वाभिमान जागृत होगा, वही उसे वर्तमान के प्रति खिन्नता का भाव देकर, भविष्य के प्रति सजग-सचेत करेगा, इस आशय से दयानन्द ने, अथर्ववेद से 'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानां विन्दते पतिम्' की शक्तिशाली उक्ति लेकर, इस विषय का प्रतिवाद करने वालों को मुंहतोड़ उत्तर दिया। जैसे-जैसे भारतीय नारी शिक्षित होती गई, वैसे-वैसे उसके पाश टूटते गए और वह सभ्य-सुसंस्कृत समाज में यथोचित आदर प्राप्त करने में सफल हो गई।

स्वामी दयानन्द की अनुभवी दृष्टि को यह विदित था कि धर्म-परिवर्तन में सबसे बड़ी विवशता पेट की विवशता होती है। क्षुधाग्नि एक ऐसी आग है जिसमें सभी आदर्श, सभी मान्यताएँ, सभी विचारधाराएँ जलकर भस्म हो जाती हैं। क्षुक्षा-पीड़ित व्यक्ति का धर्म केवल क्षुधा-शान्ति होता है और इसके पालन में वह किसी कर्म को भी कुत्सित नहीं समझता। अतः अनाथ महिलाएँ और अनाथ बालक स्वामी दयानन्द के अन्तः चक्षुओं के सामने असहाय खड़े थे। अनुभवी दयानन्द की दष्टि इनके प्रति ईसाई मिशनरियों की सहानुभूति को भी देख रही थी तथा उस सहानुभूति के पीछे कार्यरत उनकी ईसाईयत-प्रचार की भावना को भी भाँप रही थी। अतः जब उनकी प्रेरणा से, उनके जीवन काल में ही, फ़िरोजपुर के स्थान पर पहला अनाथालय स्थापित होता है तो हम देखते हैं कि दयानन्द मिशनरियों के प्रतिवाद में समय नष्ट न करके, उनकी स्वार्थमयी सहानुभूति का कर्मक्षेत्र उनके हाथ से छीन रहे हैं।

भारतीय समाज की उपर्युक्त सभी दुर्बलताओं का कारण था—अज्ञान। शिक्षा-दीक्षा से विमुख होने के कारण ही भारतीय हिन्दू समाज अधोगति को प्राप्त हुआ था। नेत्रों के स्थान पर कानों द्वारा तथाकथित ज्ञान प्राप्त कर मध्यकालीन भारतीय समाज में, ब्राह्मण-वर्ग ने अर्थ का अनर्थ कर दिया था। योगिराज कृष्ण 'गोपाल' (गो+पाल=इन्द्रियों को वश में करने वाला) से गोपाल (गऊ-पालक) अर्थात् ग्वाले हो गए। सृष्टि तथा स्रष्टा का पारस्परिक विहार 'रास लीला, कामुक-भावभंगिमा-पूर्ण नृत्य मात्र होकर रह गया। पुनर्जागरण के साथ ही आवश्यकता थी कि एक ऐसे युग का सूत्रपात हो, जिसमें राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा की एक नूतन परम्परा उद्भूत हो। स्वामी दयानन्द ने युग की इस मांग को अनुभव किया और 'सत्यार्थ प्रकाश' के तीसरे समुल्लास में शिक्षा का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए लिखा कि 'कहने-सुनने, धर्मोपदेश देने, पढ़ने या पढ़ाने का केवल यही उद्देश्य है कि व्यक्ति न्यायोचित कार्य करे।' स्वामी दयानन्द की इस व्याख्या में निहित 'सा विद्या या विमुक्तये' की ध्वनि स्पष्ट रूप से सुनी जा सकती है। न्यायोचित कार्य करने के लिए यह

(शेष पृष्ठ 48 पर)

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

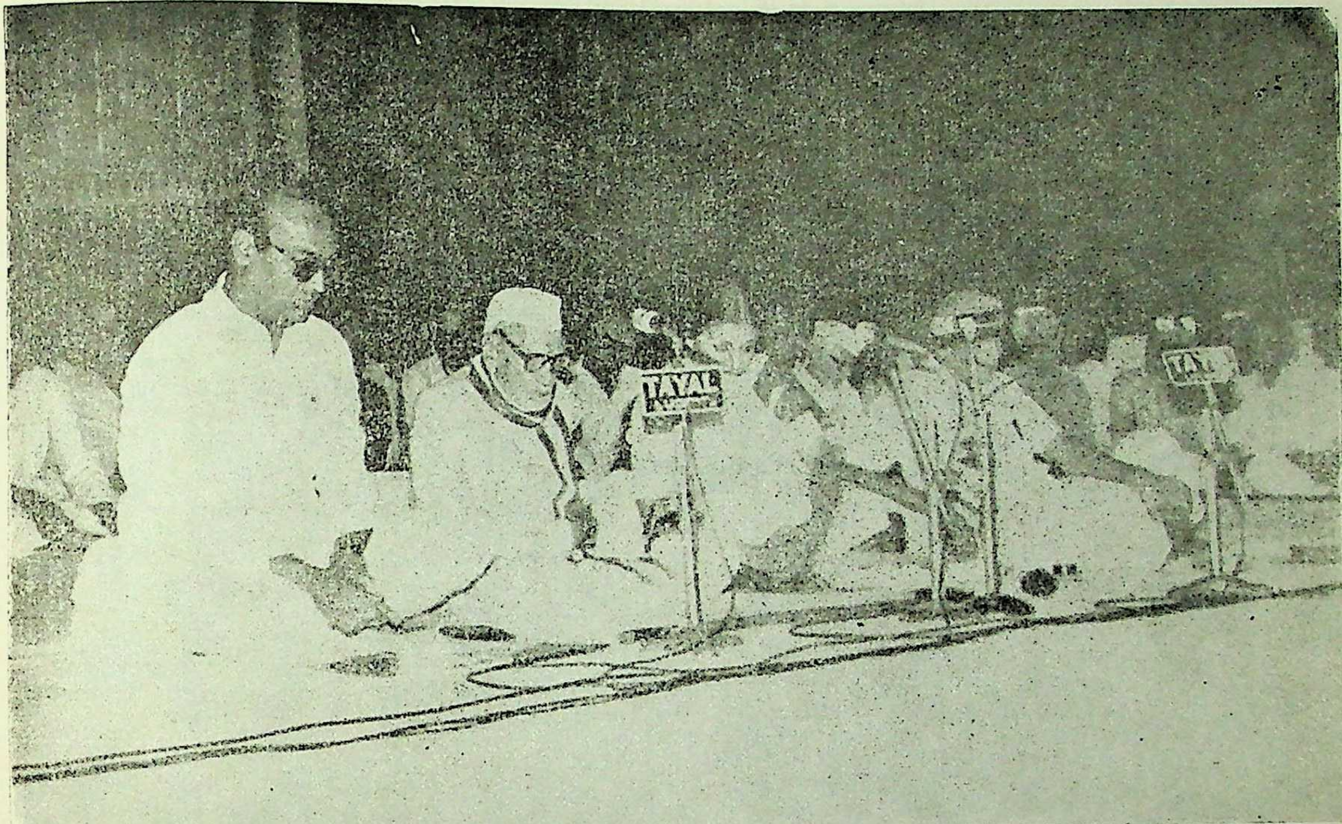

बाएँ से शिक्षा मंत्री श्री सिब्ते रजी, पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी, श्रीमती इला डालमिया, डॉ० रामकुमार वर्मा

उ०प्र० हिन्दी संस्थान : सप्तम् पुरस्कार समारोह

—डॉ० मंजुलता तिवारी

विगत 14/9/87 को उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा सम्मान तथा पुरस्कार वितरण समारोह स्थानीय गन्ना शोध संस्थान में आयोजित किया गया। समारोह में हिन्दी जगत के वयोवृद्ध 'मनीषी' मुख्य अतिथि पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी जी ने सम्मानित साहित्यकारों को तिलक लगाकर नारियल, दुशाला सहित पुरस्कृत राशि भेंट की। इसके पूर्व उन्होंने भारतेन्दु हरिश्चन्द, मैथिलीशरण गुप्त, महादेवी वर्मा तथा 'अज्ञेय' जी के चित्रों पर दीप प्रज्वलित कर उनको नमन् किया। कार्यक्रम का शुभारम्भ सरस्वती वन्दना से हुआ।

संस्थान द्वारा 1983–84 का 1,00000 रुपये का सर्वोच्च भारत-भारती पुरस्कार स्वर्गीय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' को तथा 1984–85 का 'भारत-भारती' पुरस्कार डॉ० रामकुमार वर्मा को देकर सम्मानित किया गया इसके अतिरिक्त दस साहित्यकारों को संस्थान सम्मान एवं 34 साहित्यकारों को नामित पुरस्कार से तथा सन् 1981–82 एवं 1983 के लिए पुस्तक पाण्डुलिपि पर 47 साहित्यकारों को अनुशंसा पुरस्कार प्रदान किये गये।

स्वर्गीय 'अज्ञेय' जी का भारत-भारती पुरस्कार उनकी उत्तराधिकारिणी श्रीमती इला डालमिया को दिया गया जिन्होंने इस धनराशि को साहित्य के विकास के लिए स्थापित वत्सल-निधि में जमा करने की घोषणा की। श्रीमती इला डालमिया ने विह्वल होकर कहा कि आज कितना अच्छा होता कि यह पुरस्कार 'अज्ञेय' जी स्वयं ग्रहण करते।

सर्वोच्च सम्मान पुरस्कार से सम्मानित डॉ० वर्मा ने इस अवसर पर कहा कि जिस राष्ट्र और संस्कृति में अपनी राष्ट्रभाषा के प्रति सम्मान नहीं है वह कभी विकास नहीं कर सकती। उन्होंने बल देकर कहा कि हम जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में चाहे जितने प्रयोग करें, भारतीयता और अपनी भाषा को कभी न भूलें।

21 हजार रुपये के संस्थान सम्मान से सन् 1983–84 के लिए

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

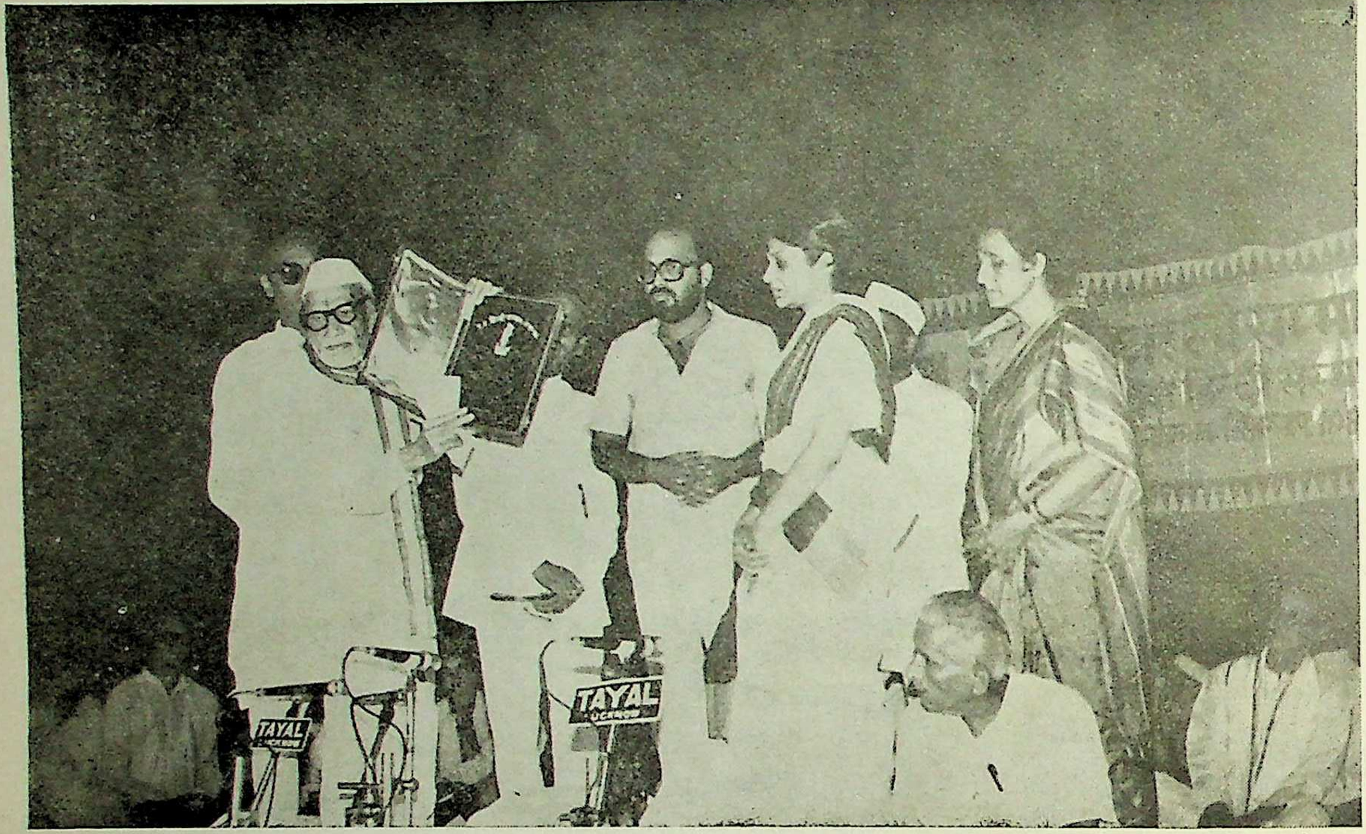

श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी से इला डालमिया स्व० अज्ञेय का पुरस्कार प्राप्त करती हुई

श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', श्री जानकीवल्लभ शास्त्री, श्री उपेन्द्र नाथ 'अश्क', डॉ० नन्दकिशोर देवराज, डॉ० देवेन्द्र शर्मा, श्री विष्णु 'प्रभाकर', श्री अमृत राय, डॉ० शम्भुनाथ सिंह, श्री गंगाप्रसाद मिश्र, श्री रमाप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' को विभूषित किया गया। सन् 1986 के सौहार्द पुरस्कार से माननीय श्री पी०वी० नरसिंहाराव, डॉ० एन० सुन्दरम्, पं० वैंकटाचल शर्मा, डॉ० एन०ई० विश्वनाथ अय्यर, श्री एन० वी० कृष्ण वारियर, डॉ० हरिवल्लभ चूनीलाल भवाणी, श्री मन्मथनाथ गुप्त, श्री विश्वनाथ शास्त्री, श्री हरिभजन सिंह, डॉ० पृथ्वीनाथ 'पुष्प' को विभूषित किया गया।

विभिन्न विधाओं में महत्वपूर्ण मौलिक ग्रंथों के लेखकों को 7,000 रुपये की राशि से सम्मानित साहित्यकार सन् 1981 में श्री गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, श्री साहित्यालंकार, डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, डॉ० सीताराम जायसवाल, श्री निर्मल वर्मा, श्री वी०रा० जगन्नाथन, श्री गोविन्द मिश्र, श्री बालशौरि रेड्डी, श्री मदनमोहन जोशी, डॉ० शिवानन्द नौटियाल सन् 1982 में श्री तरुण भाई, डॉ० श्याम तिवारी, श्री श्याम कवि, डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, श्री हरगोविन्द सिंह, श्रीमती जयन्ती पन्त, श्री तोताकृष्ण गैरोला, श्री ज्योतिर्मित्र आचार्य, श्री रवीन्द्र कालिया, श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ० भगवानदास तिवारी, श्रीकान्त जोशी, सन् 1983 में श्री श्री प्रसाद, श्रीलक्ष्मणप्रसाद मित्र, डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक', श्री हरिराम द्विवेदी, श्री वासुदेव गोस्वामी, श्री मोहन उप्रेती, श्री भगवतीचरण शर्मा 'निर्मोही', श्री गिरिराज किशोर, श्री कुबेरनाथ राय, श्री विवेकी राय, श्री प्रभाकर श्रोत्रिय, डॉ० सूरज भान हैं।

सप्तम् पुरस्कार समारोह की विशिष्टता यह रही कि इस बार सम्मानित साहित्यकारों को हिन्दी जगत के 'मनीषी' पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी जी द्वारा विभूषित किया गया। श्री चतुर्वेदी ने अपने सम्बोधन में कहा कि आज हिन्दी-दिवस औपचारिक उत्सव बनकर रह गया है। आज हम इस अवसर पर हिन्दी के प्रचार-प्रसार में आने वाली बाधाओं की चर्चा करने की जगह कवि सम्मेलन एवं गोष्ठियाँ आयोजित करके अपने कर्तव्य की इति श्रीमान् बैठे हैं। उन्होंने इस अवसर पर हिन्दी के अधिकाधिक प्रचार-प्रसार की आवश्यकता पर बल दिया।

इस अवसर पर संस्थान के उपाध्यक्ष एवं उत्तर प्रदेश शासन के शिक्षा मन्त्री सैयद सिब्ते रज़ी ने कहा कि हिन्दी केवल क्षेत्र विशेष की नहीं अपितु राष्ट्र की भाषा है। वह 40-50 करोड़ लोगों की जुबान है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हिन्दी चौथे स्थान पर है, हमें इसे और आगे बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए। अपनी बोल-चाल में भी जब तक अंग्रेजी शब्दों का मोह हम नहीं छोड़ेंगे तब तक हमारी हिन्दी उस स्थान पर नहीं पहुँच

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

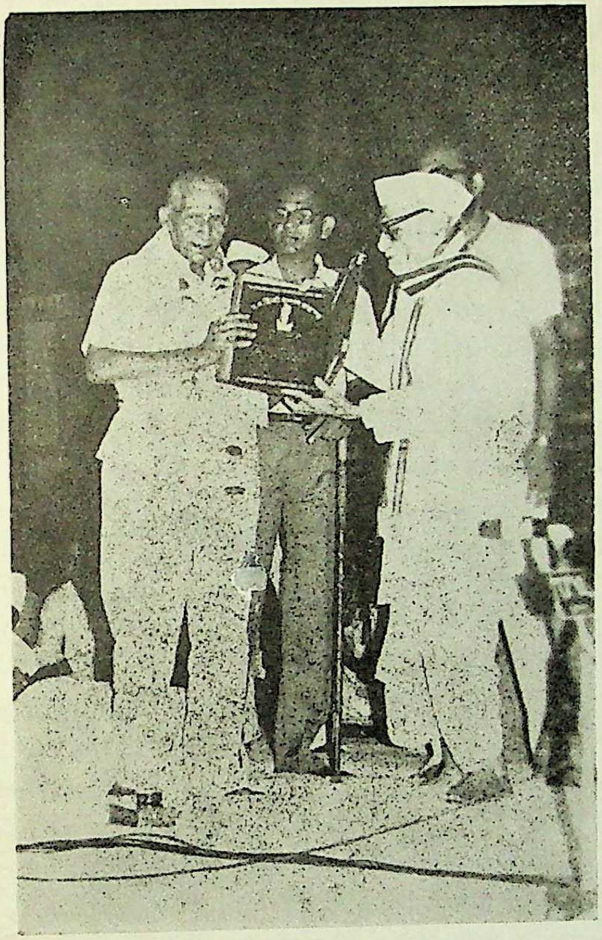

पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी से डा० रामकुमार वर्मा एक लाख रुपये का पुरस्कार ग्रहण करते हुये

पायेगी जहां तक उसे पहुंचना चाहिये। अपने संक्षिप्त एवं सारगर्भित भाषण के साथ शिक्षा मन्त्री श्री सिब्ते रज़ी ने सम्मानित साहित्यकारों एवं अतिथियों का आभार व्यक्त किया। समारोह का संचालन संस्थान के कार्यकारी उपाध्यक्ष श्री भक्त दर्शन जी ने किया।

●

कौन श्रेष्ठ

—अयोध्याप्रसाद 'भारती'

बड़ी पुरानी बात है। एक बार राजा मनु ने अपने यहाँ एक यज्ञ किया, वहाँ बड़े-बड़े विद्वान उपस्थित थे। बातों-बातों में यह विवाद छिड़ गया कि विष्णु, शिव और ब्रह्मा में श्रेष्ठ (बड़ा) कौन है। काफी देर तक विवाद चला, किन्तु कोई भी विद्वान सही हल न बता पाया।

अंततः निश्चय किया गया कि इस प्रश्न का हल भृगु ऋषि खोजें। सबने इसका समर्थन किया। भृगु ऋषि तैयार हो गये। वे विद्वानों से विदा लेकर सबसे पहले कैलाश पर्वत पर पहुँचे। उस समय भगवान शिव ध्यान में लीन थे। समाधि लगाए हुए बैठे थे। थोड़ी दूर पर नंदी बैल घूम रहा था। भृगु ऋषि ने नंदी से कहा—"मुझे शंकर जी से मिलना है अतः उन्हें यह संदेश दो।"

"नहीं वह इस समय नहीं मिल सकते। उन्होंने अभी-अभी समाधि लगायी है अतः इतनी जल्दी उन्हें जगाना उचित न होगा। कृपया आप फिर कभी आए नंदी ने इन्कार में सिर हिलाते हुए कहा।

भृगु ऋषि यह सुनकर गुस्से में भर उठे और उन्होंने भगवान शंकर को शाप दे डाला—"तू अपने आपको बहुत बड़ा समझता है जा मैं शाप देता हूँ कि तुझ पर चढ़ा हुआ जल पीने के लिए उपयोग न किया जा सकेगा।"

अब यहाँ से चलकर भृगु ऋषि ब्रह्मा जी के पास पहुँचे। वे किसी जटिल कार्य में व्यक्त थे। उन्हें इतना भी होश नहीं था कि वे भृगु ऋषि को बैठने के लिये भी कह पाते। भृगु ऋषि यह अपमान सहन न कर सके और चलते-चलते ब्रह्मा जी को यह शाप दे गये—"तूने मेरा अपमान किया है, मैं तुझे शाप देता हूँ कि कोई भी दुनियां में तेरी पूजा न करेगा।"

भृगु ऋषि की अगली और अन्तिम मंजिल थे विष्णु भगवान। जिस समय भृगु ऋषि भगवान विष्णु के पास पहुँचे, वे उस समय सो रहे थे। पहली दो घटनाओं से भृगु ऋषि इतने परेशान और खीज गये थे कि उन्होंने भगवान विष्णु के जागने का इन्तजार करना जरूरी नहीं समझा। गुस्से से विफरते हुए उन्होंने सोचा कि शायद शिव और ब्रह्मा की भाँति विष्णु भी घमंडी हैं। उन्होंने बिना सोचे-समझे एक जोरदार लात सोते हुए भगवान विष्णु के जमा दी।

विष्णु तुरन्त जाग गये। गुस्से से लाल-पीले हो रहे भृगु ऋषि को अपने सामने खड़ा देखकर भगवान विष्णु ने हाथ जोड़कर विनय पूर्वक कहा 'ऋषिवर आपके पाँवों में चोट तो नहीं आयी।"

भगवान विष्णु की विनम्रता से भृगु ऋषि शर्म से गड़ गये। उन्हें आत्म-ग्लानि हुयी। अपने को शांत करते हुए उन्होंने सारी बात बतायी। भगवान विष्णु के व्यवहार से ऋषि ने बताया—'भगवन, मेरी खोज पूरी हुयी, आपके इस विनम्र व्यवहार ने यह एक दम साफ कर दिया कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश में तीनों में आप श्रेष्ठ हैं।

"ये मेरा सौभाग्य है, ऋषिवर," भगवान विष्णु ने कहा।

●

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पुस्तक समीक्षा :–

बलिया और उसके निवासी

—समीक्षक : डॉ० कौशलकुमार राय

पुस्तक का नाम —	बलिया और उसके निवासी
लेखक का नाम —	दुर्गाप्रसाद गुप्त
प्रकाशक —	बलिया गौरव ग्रंथमाला प्रकाशन ओडवेन गंज, बलिया
मूल्य :—	41/–
प्रकाशन वर्ष :—	1986

"बलिया और उसके निवासी" शीर्षक इस पुस्तक में बलिया के भूगोल, इतिहास, पुरातत्व, संस्कृति, जातियाँ-उपजातियाँ तथा स्वतंत्रता सग्राम जैसे ज्वलन्त विषयों पर प्रकाश डाला गया है। इन विषयों के अन्तर्गत बलिया के 5 हजार वर्ष पूर्व का इतिहास समाविष्ट है। प्रायश्चित हेतु महर्षि भृगु के आगमन तथा भृगुवंश की परम्पराओं, रामयुगीन कतिपय घटनाओं से बलिया की निकटता, सीता का गंगा-तमसा तट पर बहुआरा के निकट स्थित तत्कालीन वाल्मीकि आश्रम में 12 वर्षों तक निर्वासित जीवन बिताना, भगवान बुद्ध द्वारा भरौली के निकट बड़ी संख्या में राक्षसों का प्रव्रजित किया जाना, स्थानीय विकास में असुरों का योगदान, चीनी यात्रियों फाहियान (सन् 399 से 413 तक) तथा ह्वेनसांग (सन् 629 से 645 तक) द्वारा बलिया स्थित बौद्ध बिहारों का निरीक्षण, खैराडीह, लखनेश्वर डीह, कुतुबगंज सिकन्दरपुर के किलों का विवरण, मुस्लिम शासन में मनियर के निकट जिले की राजधानी तथा प्रमुख सामरिक केन्द्र के रूप में खरीद (गजनफराबाद) नामक विशाल नगर का विकास, कुतुबुद्दीन, बाबर, हुमायूँ, शेरशाह तथा सिकन्दर लोदी का बलिया आगमन, सन् 500 से लेकर सन् 1300 तक के 800 वर्षों में जिले के भर एवं चेरू राजाओं का शासन, राजपूतों का आगमन और भरों से उनका संघर्ष, अंगरेजी राज में बलिया की उपेक्षा, सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में बलिया का योगदान, 1 नवम्बर 1879 को वर्तमान बलिया जिले की स्थापना, सन् 1911 से लेकर सन् 1942 तक के गहन स्वतंत्रता आन्दोलनों में प्रमुखता के साथ जुड़े रह कर 20 अगस्त, सन् 1942 को अहिंसक जनक्रांति के द्वारा बलिया में प्रजातांत्रिक स्वराज्य की स्थापना तथा दमन के दौरान त्याग और बलिदान की नई मिसालें कायम करने जैसी प्रमुख घटनाओं का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। पुस्तक के प्रारम्भ में बलिया के नामकरण के सन्दर्भ में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण शोध-दृष्टि प्रस्तुत की गई है जो सम्भवतः नामकरण की गुत्थी सुलझा पाने में समर्थ हो।

पुस्तक के अन्त में, स्वराज्य प्राप्ति के बाद आई राजनीतिक चेतना के विभिन्न स्वरों को मुखर किया गया है। उनमें कांग्रेस के अतिरिक्त अन्य नये दलों के उदय तथा उनके क्रिया-कलापों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। इससे पुस्तक सर्वांगीण एवं समीचीन बन गई है।

श्री दुर्गाप्रसाद गुप्त ने प्रस्तुत पुस्तक में अपने विस्तृत अध्ययन तथा गंभीर आलोचना का परिचय दिया है। इस पुस्तक का प्रणयन कर उन्होंने अपने जनपद की महान सेवा की है। उसका स्थान एवं महत्व अक्षुण्ण बन गया है।

●

(पृष्ठ 44 का शेष)

जरूरी है कि व्यक्ति अनेक प्रकार के पूर्वाग्रहों, विवशताओं तथा स्वार्थों से मुक्त हो। नैतिकता का उदय तभी सम्भव होता है, जब उसका अन्तः-करण मुक्त होता है। शिक्षा का अधिकार केवल सनाढ्य वर्ग तक ही सीमित न रहकर, जनसाधारण को प्राप्त हो, यह दयानन्द की शिक्षा-पद्धति का दूसरा चरण था। उनकी शिक्षा-पद्धति के ये दोनों चरण नितान्त महत्वपूर्ण चरण हैं। प्रथम इसलिए कि दयानन्द के अनुसार वेदों के ज्ञान में ही सृष्टि का सर्वोत्तम ज्ञान निहित है। दूसरा इसलिए कि 'जब सभी वर्गों के लोग शिक्षित तथा प्रशिक्षित होंगे, तब कोई भी व्यक्ति छल-कपट या अनुचित पाखण्ड नहीं कर सकता।'

अस्तु, जिस विचारधारा का सूत्रपात स्वामी दयानन्द ने किया था, वही विचारधारा, आगे चलकर, उनके अनुयायी आर्य-समाज की पथ-प्रदर्शक बनी। यही कारण है कि आधुनिक भारत के समस्त राष्ट्रीय सामाजिक, साँस्कृतिक तथा राजनीतिक आन्दोलनों में आर्य-समाज का योगदान विद्यमान रहा है।

●

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ० प्र०, स्वत्वाधिकारी के लिए **अशोक प्रियदर्शी**, निदेशक, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ० प्र० द्वारा प्रकाशित तथा सरला भार्गव द्वारा सरल प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊ में मुद्रित

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

उप15846521

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow

Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri
Digitized by Sarayu Foundation Trust, Delhi and eGangotri

पंजीकृत संख्या एल० डब्लू/एन० पी०/146
भारत सरकार के रजिस्ट्रार आफ न्यूजपेपर्स की रजिस्ट्री संख्या 26619/74

CC-0. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow
CC-0. In Public Domain. UP State Museum, Hazratganj. Lucknow